जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है

(पांडुशिला ,सिंघासन, छत्र, चवर प्रातिहार्य,जाप माला ,मंगल कलश, पूजा बर्तन ,चंदोवा,तोरण ,झारी ,

(शुद्ध चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किया जाता है)

नोट:-हमारे यहाँ घरो में उपयोग हेतु ,साधुओ के उपयोग हेतु ,
अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध घी भी आर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है

SOURABH KUMAR JAIN
9993602663
77229 83010
SOURABHJN1989@GMAIL.COM

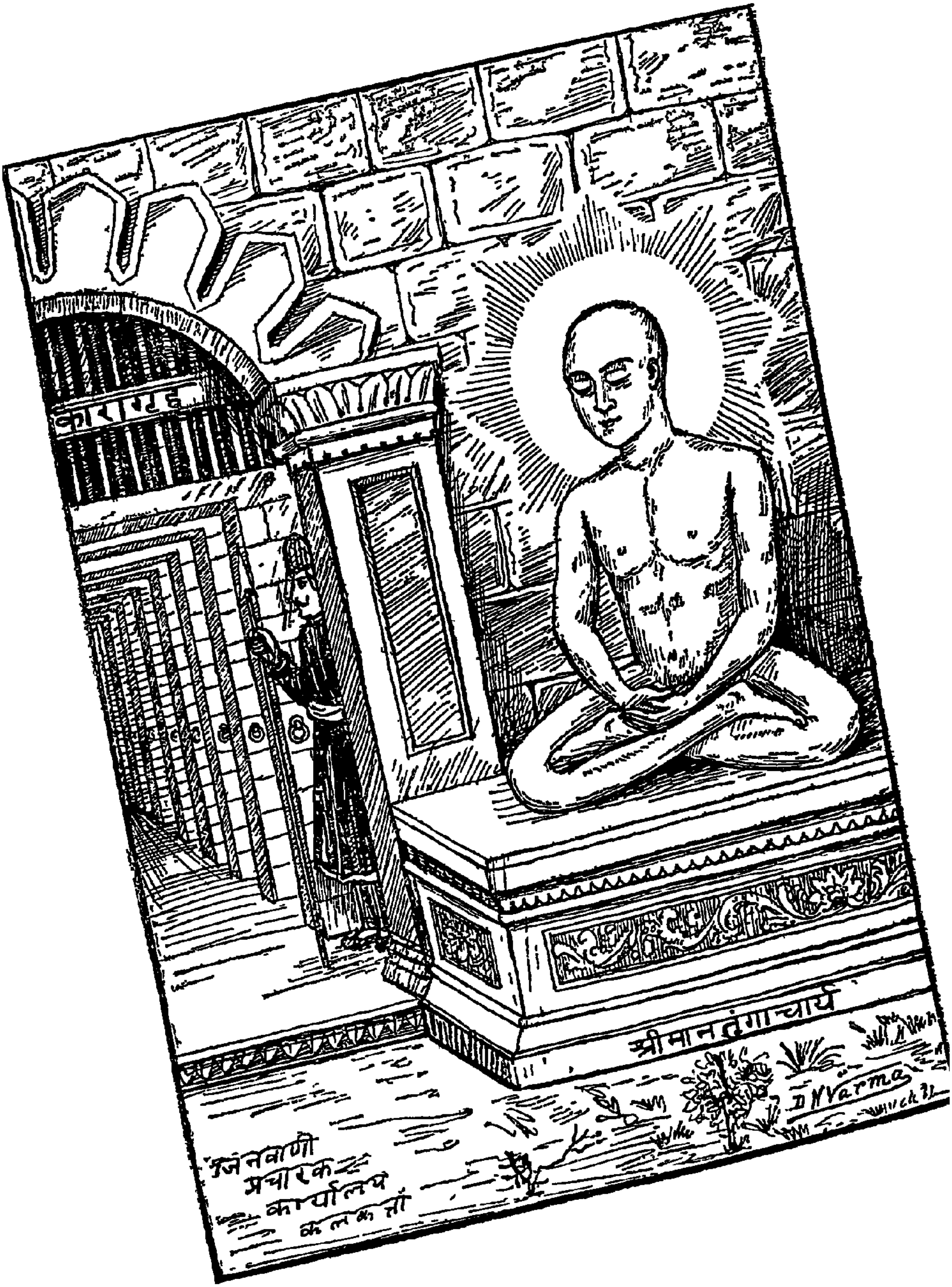

श्रीमानतुंगाचार्य
D.N.Varma
जिनवाणी
प्रचारक
कार्यालय
कलकत्ता

श्रीमत् स्वामी मानतुंगसूरि

मालवा प्रान्तके उज्जैन नगरमें राजा भोज* बड़े गुणग्राही और विद्या प्रेमी हो गये हैं, संस्कृत विद्यासे तो उनको बहुत गाढ रूचि थी, उन्होंने स्वयम् संस्कृत भाषाका खूब अध्ययन किया था और अपनी कचहरियों या नित्य व्यवहारमें संस्कृत को ही स्थान दे रक्खा था। उनकी राज्य सभामें बड़े-बड़े संस्कृतके विद्वान थे उनमें विप्र कालिदास और वररूचि ब्राह्मण बहुत प्रवीन थे, उनकी कीर्तिध्वज संसारमें चहुओर फहराती थी और नामी-नामी विद्वान उन्हे सिर झुकाते थे। कालीदासने तो कालीदेवीको सिद्ध करके विद्या प्राप्तकी थी उसने देवीके मठमें जाकर ७ दिन तक कठिन तपस्या की और बिना अन्न जलके कालीकी मूर्तिके पास उसका ध्यान लगाये औंधा पड़ा रहा। आठवें दिन कालीने प्रगट होकर उसे दर्शन दिये तब कालीदासने राज-पाट कुछ भी न मांग केवल वचन सिद्ध मांगो और विपत्तिमें सहायक होनेका बचन ले लिया।

एक दिन सेठ सुदत्तजी अपने प्रिय पुत्र मनोहरको साथ लेकर महाराजा भोजकी सभामें गये। राजाने उनका बड़ा आदर किया और कुशल मंगलके पश्चात पूछाकि आपका यह होनहार बालक क्या पढ़ता है ? सेठजीने उत्तर दिया कि हे महाराज ! अभी इसका विद्यारंभ ही है इसने केवल नाममालाके श्लोक कंठस्थ किये हैं। विद्वान राजा भोजने नाममाला नामका कोई संस्कृत ग्रन्थ सुना भी नहीं था, वे बोले—

राजा—नाम माला ग्रंथका नाम मैं आज ही आपके मुखसे सुन रहा हूँ, इस अश्रुत पूर्व ग्रथके रचयिता कौन हैं ?

सेठजी—महाराज ! आपकी इसी महानगरीमें स्याद्वाद विद्या पारङ्गत महाकवि श्रीधनञ्जयजी रहते हैं उन्हींकी कृपाका यह प्रसाद है।

राजा—ऐसे महान विद्वानके आपने हमें कभी दर्शन भी नहीं कराये !

विप्र कालिदास सभामें बैठे हुए यह सब चर्चा सुन रहे थे। उसका जैनियोंसे प्राकृतिक द्वेष था और महाकवि धनञ्जय तो खास असमंजस था सो उन्हें उनकी प्रशंसा सहन नहीं हुई वह बीच ही में बोल उठे कि महाराज ! कहीं वैश्य महाजन भी वेद पढते हैं ? इन बेचारोंके पास विद्या कहां से आई ?

विद्वज्जन अनुरागी महाराज भोजके चित्तपर कालिदासके इस कथनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा उन्हे विद्वद्वर धनञ्जयजीसे मिलना ही था क्योंकि विद्वानोंसे प्रेमसभाषणका उन्हें एक व्यसन था इसलिये कालिदासके कहनेकी उपेक्षाकरके उन्होंने अपनेमंत्री

* इनका समय ईसाईकी ग्यारहवीं शताब्दीका सिद्ध हुआ है।

को धनञ्जयको लेनेके लिये भेज दिया और वे आ भी गये। उन्होंने पहुंचते ही एक आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़ा जिसे सुनकर सभाके लोग और राजा भोज बहुत प्रसन्न हुए। राजाने उन्हें बड़े मान सन्मानसे बैठाया और कुशल प्रश्नके अनन्तर पूछा—

राजा—हमने आपको एक प्रसिद्ध विद्वान सुना है, परन्तु आश्चर्य है कि हमसे आप आज तक मिले नहीं ?

धनञ्जय—विहँसकर, कृपानाथ ! आप पृथ्वीपति हैं, जबतक पुण्यका प्रबल उदय न हो तब तक आपके दर्शन लाभ क्योंकर हो सकते हैं, आज हमारे धन्य-भाग्य हैं जो आपसे साक्षात् करके सफल मनोरथ हुआ हूँ।

राजा—आप इतने बड़े नामाँकित विद्वान हैं फिर यह छोटा-सा ग्रथ आपको नहीं शोभता। अवश्य ही कोई महाग्रंथ लिखा होगा या रचनेका प्रारम्भ किया होगा।

यह सुनकर कालिदाससे न रहा गया वह बोले कि महाराज ! नाममाला हमलोगों की है, इसका यथार्थ नाम नाममंजरी है, ब्राह्मण विद्वान हो इसके बनानेवाले हैं और ब्राह्मणोंमें ही ऐसी योग्यता होती है ये बेचारे वणिक लोग ग्रथ रचनाके मर्मको क्या जाने ! यह बात विद्वान धनंजयको बहुत बुरी लगी और लगना ही चाहिये क्योंकि दिन-दहाड़े उनकी कृतिपर हड़ताल फेरी जा रही थी उन्होंने कहा कि हे महाराज ! यह झूठ है, मैंनें यह ग्रथ बालकोंके पठनार्थ रचा है यह बहुत लोग जानते हैं और आप पुस्तक मंगाकर देख लीजिये, जान पड़ता है कि इन लोगोंने मेरा नाम लोप करके अपना नाम रख लिया है और नाम मजरी बना ली है।

विद्या विशारद राजा भोजने वह ग्रथ मंगाया और स्वयं परीक्षा की पश्चात् अन्य विद्वान्मण्डलीसे समर्थन पाकर कालिदाससे कहाकि तुमने "यह बड़ा अनर्थ किया है जो दूसरों की कृतिको छिपाकर अपनी कृति प्रसिद्ध किया" यह चोरी नहीं तो क्या है ? इसपर कालिदास बोले कि महाराज ! ये धनंजय अभी कल ही तो उस मानतुगके पास पढ़ते थे जिसमें विद्या की गन्ध भी नहीं है आज ये कहांसे विद्वान हो गये जो ग्रंथ रचने लग गये। उस मानतुंगको ही बुलाके हमसे शास्त्रार्थ करवाके देख लीजिये, इनके पाण्डित्यकी परीक्षा सहजमें हो जावेगी।

गुरुदेव मानतुंगजीके विषयमें ऐसे अनादरके बचन धनंजयजीको सहन नहीं हुए वे कुपित होकर बोले कि कौन ऐसा विद्वान है जो स्वामी मानतुंगके चरणोंसे विवाद कर सके। मैं देखूं तुममें कितना पाण्डित्य है पहिले मुझसे शास्त्रार्थ कर लो पीछे गुरुवरका नाम लेना। बस ! कालिदासको अपने ज्ञानका अभिमान भरपूर तो था

ही धनंजयजी से शास्त्रार्थ छेड दिया और विविध विषयोंपर परस्पर वाद-विवाद हुआ। स्याद्वादी धनंजयके उत्तर-प्रत्युत्तरसे निरुत्तर होकर कालिदास खिसिया गये और राजासे फिर वही बात बोले कि मैं "इनके गुरु मानतुंगसे शास्त्रार्थ करूगा।"

विद्वान धनंजयका पक्ष प्रबल है यह बात महाराजा भोज समझ चुके थे परन्तु कालिदासके सन्तोषके लिये और शास्त्रार्थका कौतुक देखनेके लिये उन्होंने स्वामी मानतुंगके निकट अपना दूत भेज दिया। दूत वनमें गया और राजाकी आज्ञानुसार स्वामीसे निवेदन किया कि भगवन्! मालवाधीश महाराजा भोजने आपकी ख्याति सुनकर दर्शनोंकी अभिलाषा की है और दरबारमें बुलाया है सो कृपाकर चलिये। इसपर मुनिराजने उत्तर दिया कि भाई! राजद्वारसे हमें क्या प्रयोजन है? हम खेती नही करते, वाणिज्य नहीं करते और न किसी प्रकारकी याचना करते हैं फिर राजा हमें क्यों बुलावेगा? अस्तु साधुओंको राजासे कुछ सम्बन्ध नहीं है और न हम उनके पास जाना चाहते हैं।

बेचारा दूत हताश होकर लौट पडा और मुनिराजने जो उत्तर दिया राजाको सुना दिया। इसपर राजाने फिर सेवक भेजे परन्तु वे नही आये, इस प्रकार चार बार हुआ। पांचवीं बार कालिदासके उकसानेसे महाराज क्रोधित हो उठे और अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी कि जिस तरह हो सके पकडके लाओ। कई बारके भटके हुए सेवक यह चाहते ही थे तत्काल ही उन महात्माजी को पकड़ लाये और राज्य सभामें खडा कर दिया।

उस समय स्वामीजी ने उपसर्ग समझकर मौन- धारण करके साम्यभावका अवलम्बन कर लिया, राजाने बहुत चाहा कि ये महानुभाव कुछ बोलें परन्तु उनके मुंहसे एक अक्षर नहीं निकला। तब कालिदास और अन्य द्वेषी ब्राह्मण बोले कि महाराज यह कर्नाटक देशसे निकाला हुआ यहाँ आके रहा है महामूर्ख है, राजसभा देखके भयभीत हो रहा है, आपका प्रताप नहीं सह सकने से कुछ बोलता नहीं है। इसपर बहुत लोगोंने मुनि महाराजसे प्रार्थना की कि "आप सन्त हैं इस समय आपको कुछ धर्मोपदेश देना चाहिये राजा विद्या विलासी हैं सुनकर सन्तुष्ट होंगे परन्तु वे धीर वीर महा साधु, महामेरुकी तरह अडोल हो गये। सब लोग कह कहके थक गये परन्तु फल कुछ नहीं हुआ। इस पर राजाने क्रोधित होकर हथकड़ी-बेड़ी डालके उन्हे अड़तालीस कोठरियोंके भीतर एक बन्दी गृहमें कैद कर दिया और मजबूत ताले लगवाकर पहरेदार बैठा दिये।

वे मुनिनाथ तीन दिन तक बन्दीगृहमें रहे चौथे दिन आदिनाथ स्तोत्रका काव्य रचा जो यन्त्र-मन्त्र और ऋद्धिसे गर्भित है। ज्योंही स्वामीने एक बार पाठ पढा त्यों ही हथकडी, बेड़ी और सब ताले टूट गये और खट खट किवाडे खुल गये, स्वामी बाहिर निकल कर चबूतरेपर जा विराजे। बेचारे पहिरेदारोंको बड़ी चिन्ता हुई उन्होंने बिना किसीसे कहे सुने फिर उसी तरह उन्हें कैद कर दिया, परन्तु थोडे ही देरमें फिर वही दशा हुई सेवकों ने फिर वैसा ही किया, पर मुनिराज फिर बाहर आ विराजे। अब की बार सेवकोंने राजासे आके निवेदन किया और मुनिराजके बन्धन रहित होनेका बृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ परन्तु पीछे यह सोचकर कि शायद रक्षामें कुछ प्रमाद हुआ होगा, इसलिये सेवकोंसे फिर कहा कि उन्हें उसी तरह बन्द कर दो और खूब निगरानी रक्खो। सेवकोंने वैसा ही किया परन्तु फिर यह हाल हुआ कि वे सकल व्रती साधु बाहिर निकलकर सीधे राज्य सभामें ही जा पहुंचे।

महात्माजी के दिव्य शरीरके प्रभावसे राजाका हृदय कांप गया उन्होंने कालिदासको बुलाकर कहा कि कविराज! मेरा आसन कम्पित हो रहा है मैं अब इस सिंहासनपर क्षणभर भी नहीं ठहर सकता हूं। कालिदासने राजाको धैर्य बंधाया और उसी समय योगासन पर बैठकर कालिका स्तोत्र पढना शुरू कर दिया तो थोड़े ही समयमें कालिका देवी प्रगट हुई।

इतनेमें मुनिराजके समीप चक्रेश्वरी देवीने दर्शन दिये। चक्रेश्वरीका रूप भव्य सोम्य और कालिकाका बिकराल चण्डी रूप देखकर राज्य सभा चकित हो गई। चक्रेश्वरीने ललकार कर कहाकि कालिके तू यहां क्यों आई! क्या अब तूने मुनि महात्माओंपर उपसर्ग करनेकी ठानी है? अच्छा देख अब मैं तेरी कैसी दशा करती हूं। प्रभावशालिनी चक्रेश्वरीको देखकर कुटिल कालिका कांप गई और नाना प्रकार से स्तुति करके कहने लगी कि हे माता! क्षमा करो अब मैं ऐसा कृत्य कभी नहीं करूंगी। इस पर चक्रेश्वरीने कालीको बहुत-सा उपदेश दिया और अन्तर्ध्यान हो गई इसके पश्चात् कालिकाने मुनिराजसे क्षमा प्रार्थना की और अदृश्य हो गई।

राजा और कालिदासने मुनिराजका प्रताप देखकर क्षमा मांगी और नाना प्रकारसे स्तुति की, राजा भोजने मुनिराजसे श्रावकके व्रत लिये और अपने राज्यमें जैन धर्मका खूब प्रचार किया, जिससे आज तक धर्म हरा भरा बना है।

—प्रकाशक

❀ श्रीआदिनाथाय नमः ❀

श्रीभक्तामर-कथा-कोष

ऋद्धि मंत्र, यंत्र और साधन विधि।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानं।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥
यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रम् ॥२॥

हैं भक्त-देव-नत मौलि-मणि-प्रभाके, उद्योतकारक विनाशक पापके हैं,
आधार जो भवपयोधि पडे जनोंके, अच्छी तरह नम उन्ही प्रभुके पदोंको।
श्रीआदिनाथविभुकी स्तुति मैं करूगा, की देवलोकपतिने स्तुति है जिन्होंकी,
अत्यन्त सुन्दर जगत्त्रय चितहारी सुस्तोत्रसे, सकल शास्त्र-रहस्य पाके ॥२॥

भावार्थ....भक्तिमान् देवों के झुके हुए मुकुटोंके मणियोंकी प्रभाको प्रकाशित करने वाले, पाप रूप अन्धकार को दूर करने वाले, संसार से डूबते हुए मनुष्यों को चौथेकाल की आदि में सहारा देने वाले और द्वादशांग के पाठी इन्द्रों ने बड़े बड़े त्रिजग मोहक स्तोत्रों के द्वारा जिन की स्तुति की है उन प्रथम जिनेन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं।

१ ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। मंत्र—ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा। विधि—पवित्र भावोंके साथ प्रतिदिन ऋद्धि और मन्त्रको एक सौ आठ बार जपना चाहिये और यंत्रको पासमें रखना चाहिये। इससे सब प्रकारके उपद्रव नष्ट होते हैं।

२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ॐ ह्रीं जिणाणं। मंत्र—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः। विधि—काला वस्त्र पहिनके, काली माला लेकर, पूर्व दिशा की ओर मुख कर के दडासन बैठकर २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जाप करना चाहिये अथवा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार

ऋद्धि और मंत्रका जाप करना चाहिये। नमकका होम करना और एक बार भोजन करना उचित है। इससे मस्तक की पीडा बन्द होती है और यन्त्र पास में रखने से नजर बन्द होती है।

सेठ हेमदत्तकी कथा।

उज्जैन नगरमें एक सुदत्त नामका चोर रहता था, एक दिन कोतवाल ने उसे चोरी करते हुए पकड़ लिया जब दरबार में पेश किया तो राजा ने कुपित होकर पूछा कि सच बतला तू चोरी का माल कहां रखता है?

राजाकी डाट लगने पर चोर सोचने लगा कि किसी धनवानका नाम बतला दूंगा तो राजाको बहुत धन लाभ होगा और मैं बच जाऊंगा। निदान डरते डरते चोरने वहांके प्रसिद्ध धनिक सेठ हेमदत्तजी का नाम ले दिया। राजाने तुरन्त ही चपरासी के हाथ आज्ञा पत्र भेजकर सेठजी को बुलाया और कहा हम तुम्हें बड़े ईमानदार समझते थे, परन्तु तुम्हारे व्रत उपवास जिन-पूजा आदि कोरे पाखंड हैं बताओ इस चोरने जो माल तुम्हें दिया है वह कहां है?

वेचारे सेठजी के प्राण सूख गये, वे हाथ जोड़ कर कहने लगे कि मैंने इसे आज ही देखा है, मैं इसको पहिचानता तक नहीं हूं। सेठजी का वक्तव्य समाप्त भी नहीं होने पाया था कि चोर बीच ही में बोल उठा, वह कहने लगा कि दयानिधान! मुझ गरीबकी रकम मारने की चेष्टा मत करो, इस तर्ज से कहा कि राजा को पूरी पूरी जम गई।

सेठ हेमदत्तने बहुत विनय की और अपनी सच्चाई सुनाई पर राजाको एक भी न जंची। उन्होंने अपने सिपाहियों को आज्ञा दे दी कि सेठ हेमदत्त को भयंकर जंगल के अन्धकूप में डाल दो, तब सिपाहियों ने वैसा ही किया।

पाठक! राजाने मूर्खता तो कर डाली, परन्तु सेठ हेमदत्त ने धीरज नहीं छोड़ा, उन्होंने प्रथम और द्वितीय मंत्रकी भक्ति पूर्वक आराधना की। जिसके प्रभावसे विजयादेवीने प्रगट होकर उन्हें अन्धकूपसे निकाल लिया और बाहर एक सुन्दर सिंहासन पर विराजमान कर खूब आभूषणों से सजा दिया। देवीने सेठ हेमदत्तकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि तुम कहो तो मैं राजाको अच्छी सजा देऊं। परन्तु उस धर्म धुरन्धर सेठने यही कहा कि इसमें राजाका दोष नहीं है, हमारा दुर्भाग्य ही इसमें कारण है। जब राजाने ये विचित्र समाचार सुने तो वे वहां तुरन्त दौड़े गये और सेठ तथा देवी से क्षमा प्रार्थना की। देवीने राजाको बहुत लज्जित किया और सोच विचार कर कार्य करनेके हेतु बहुत कुछ उपदेश देकर देवलोक को चली गई। राजाने जैन-धर्म अंगीकार किया और सेठ साहबको बड़ी इज्जतसे घर लाये।

उस चोरको राजाने फिर बुलाया और कठिन दण्ड भोगनेकी आज्ञा दी। परन्तु कृपालु सेठ हेमदत्तजीके कहनेसे छोड़ दिया॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।

बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

हूं बुद्धिहीन फिर भी बुधपूज्यपाद, तैयार हूं स्तवनको निर्लज्ज होके।
है और कौन जगमें तज बालको जो, लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र-बिंब ॥३॥

भावार्थ—देवताओं ने जिनके सिंहासन की पूजा की है ऐसे हे जिनेन्द्र! मैं बुद्धि विना भी निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने को तत्पर हूं, सो ठीक ही है। पानी में दिखाई देनेवाले चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब को एकाएक पकड़ने की बालक के सिवाय और कौन इच्छा करता है?

३ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो परमोहि जिणाणं।

मंत्र—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यो सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मत्रको कमलगट्टे की माला द्वारा ७ दिनतक प्रतिदिन त्रिकाल १०८ बार जपना चाहिये। होमके लिये दशांगी धूप और चढाने को गुलाव के फूल हो। चुल्लू में पानी मंत्र कर २१ दिन मुंहपर छींटे देनेसे सब प्रसन्न होते हैं और यंत्र पास मे रखने से शत्रु की नजर बन्द होती है।

वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥

होवे बृहस्पति समान सुबुद्धि तो भी, है कौन जो गिन सके तव सद्गुणोंको।
कल्पान्तवायु-वशसिन्धु, अलंघ्य जो है, है कौन जो तिरसके उसको भुजासे ॥४॥

भावार्थ—हे गुणसमुद्र! बृहस्पतिके समान बुद्धिमान मनुष्य भी आपके चन्द्रवत उज्ज्वल गुणोंके कहनेको समर्थ नहीं हो सकता भला, प्रलयकार की पवनसे लहराते और जिनमें मगरमच्छ उछलते हैं ऐसे महासमुद्रको कौन मनुष्य अपनी भुजाओंसे तैर सकता है?

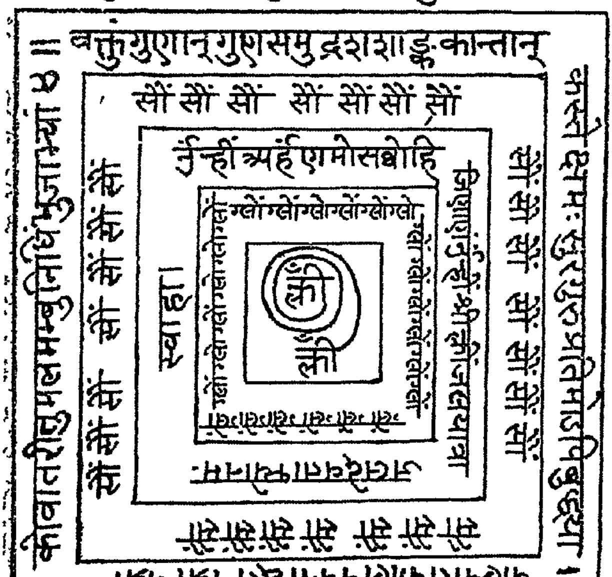

४ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाणं।

मंत्र-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जल यात्रा देवताभ्यो नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मंत्र सफेद मालासे ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार जाप करना, सफेद फूल चढाना, दिनमें एक बार भोजन करना और पृथ्वी पर सोना। यंत्र पासमें रखकर मंत्र द्वारा एक एक कंकरीको सात सात बार इसी तरह इक्कीस कंकरियोंको जलमें डालनेसे जलमें, मछलियां नहीं आती हैं।

सेठ सुदत्तजी की कथा।

मालवा प्रान्तकी स्वस्तिमती नगरी में एक सेठ जी रहते थे उनका नाम सुदत्त था। उनके यहां जवाहिरात का व्यापार था। जैन-धर्म और श्रावकके क्रिया कर्ममें वे बड़े सावधान थे।

एक दिन सकल संयम के साधक जैन साधु विहार करते हुए आहार के लिये सुदत्त सेठके घर से निकले सेठजी ने उन्हें विधिपूर्वक पड़गाहा और भक्ति सहित आहार दिया। पश्चात् बड़े नम्र भावसे प्रार्थना की कि मुझे काई स्तोत्र सिखाइये जिससे आपकी स्मृति रहे और मेरा जन्म सफल होवे। कृपालु मुनिराज ने उसे ऋद्धि मन्त्र समेत आदिनाथ स्तोत्रके तीसरे, चौथे युगल काव्य सिखा दिये।

थोड़े ही दिनोंके पश्चात् सेठ सुदत्तजी ने जहाजों में व्योपारकी बहुतसी सामग्री लदवो कर कई व्यापारियोंके साथ रतनद्वीप को. चल दिया। आधी दूर भी नहीं गये थे कि समुद्रमें बड़ा भारी तूफान आया और जहाज डगमगाने लगे। लोग बड़े ही घबराये और सबको प्राणों की पड़ गई, नाना चेष्टाएं कीं परन्तु जहाज थामना असम्भव दिखने लगा। अन्तमें विद्वान सेठ सुदत्तजी ने पंच नमस्कार मन्त्र स्मरण करके भक्तामरके तृतीय और चतुर्थ काव्य जपे। इसके प्रभावसे प्रभावती देवी प्रगट हुई और सबके जहाज किनारे पर आ गये देवीने सेठजी की बड़ी प्रशंसा की और रत्नजड़ित एक

चन्द्रकांति-मणि भेंट करके चली गई, चलते समय यह कह गई कि कभी आवश्यकता पड़े तो याद करना।

सेठ सुदत्तजी मंडली समेत सकुशल रतन द्वीप पहुंच गये और अपने यहां की सामग्री बेंच कर तथा वहां की सामग्री खरीद लौट पड़े।

रास्तेमें एक बन्दर स्थान के किनारे पर ठहरे। वहां पास ही में एक जिन-मन्दिर था, उसमें जाकर सेठजी ने अष्ट द्रव्य से जिनपूजा की, मन्दिरके पास ही एक गुफा में एक तापसी रहता था। वह महा हत्यारा, मांसका लोलुपी इनसे कहने लगा कि, यहां सब लोग महिषा की वलि दिया करते हैं तुम भी देओ, नहीं तो तुम्हारे प्राणों की कुशल नहीं है। दयालु सेठ सुदत्त ने उस नीच अधम से कहा कि महाशय! जो हो हम हिंसा कर्म नहीं करेंगे। महिषा गूगल से भी कहते हैं यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम मंगवा देवें। यह सुनकर वह धूर्त और भी क्रोधित हुआ, तब सेठ सुदत्तने राजा जसोधर* का दृष्टान्त दिया कि उन्होंने मात्र तिल्लीका बकरा बनाके चढ़ाया था जिसके कारण सात भव तक कुगति में पड़े। यह धर्मोपदेश उस पापी को बिलकुल न जचा और वह लाल होकर सेठजी पर इकदम टूट पड़ा।

ऐसी और अधार्मिक विपदा देख सेठ सुदत्तजी ने ही युगल काव्य पढ़कर देवीको चितारा। तुरन्त ही प्रभावती

---

* यशोधर चरित्रमें इसका सविस्तार वृतान्त है।

देवी ने प्रगट होकर उस तापसीका गला पकड़ लिया तब तो बेचारा लाचार हुआ और त्राहि त्राहि* कहकर सेठजी के चरणों पर गिरा। अन्त में 'अबसे हिंसा नहीं करूंगा' ऐसा वचन लेकर देवी तो स्वर्ग धामको चली गई और सेठ सुदत्तजी सकुशल घर आये।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश
कर्तुंस्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः॥
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रम्,
नाभ्येति किंनिजशिशोःपरिपालनार्थम्॥

मैं हूं शक्तिहीन फिर भी करने लगा हूं, तेरी प्रभो! स्तुति हुआ वश भक्तिके।
क्या मोहके वश हुआ शिशुको बचाने, है सामना न करता मृग सिंहका भी॥५॥

भावार्थ—हे मुनिनाथ! मैं बुद्धिहीन और असमर्थ हूं तो भी भक्ति वशात् आपकी स्तुति करनेको तत्पर हूं। क्योंकि हरिण अपने बालक को बचानेके लिये प्रेम के वश होकर अपने बलको न सोचकर क्या सिंहका सामना नहीं करता है? अवश्य करता है।

५ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो अणतोहि जिणाण।

मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्व संकट निवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा।

---

* रक्षा करो रक्षा करो।

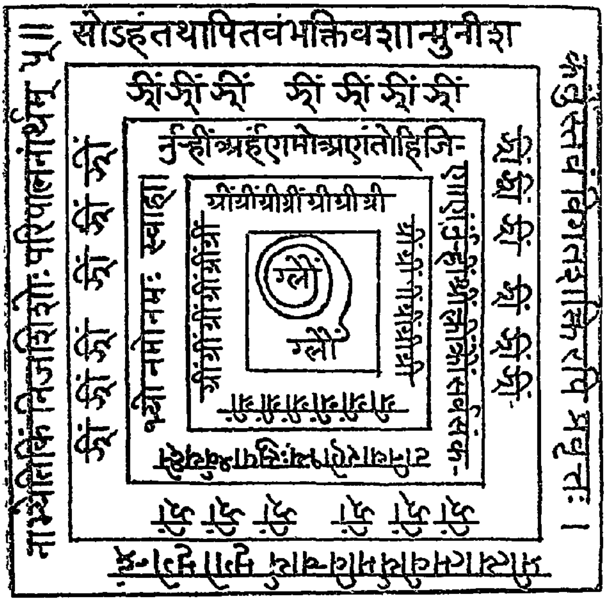

विधि—पीला वस्त्र पहिनकर ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करना चाहिये पीले पुष्प चढाना और कुन्दरू की × धूप जलाना चाहिये। जिसकी आंखें दुखती हों उसे सारे दिन भूखा रखके शामको मंत्र द्वारा २१ बार मन्त्रे हुए बनासे जलमें घोलकर पिलाने या आंखोंपर छीटने से दुखती हुई आंखें बन्द होती हैं पासमें यत्र रखना चाहिये।

देवल बढ़ईकी कथा।

कोंकन देशमें सुभद्रावती नगरी थी। वहांके राज्य मन्त्रीके यहां सोमक्रांति नामका एक बालक था। ७ बरसकी अवस्था ही में वह पाठशाला में पढ़ने को जाने लगा था और थोड़ ही कालमें वह व्याकरण, काव्य, न्याय और धर्मशास्त्र में प्रवीण हो गया।

एक दिन उस महारूपवान सोमक्रान्ति ने बहुत से लड़कों को गेंद खेलते देखा और उसका भी खेलनेको जी हो आया। निदान एक लड़के का डंडा मांगकर खेलने लगा, भाग्य से खेलते २ वह डण्डा टूट गया। बेचारा सोमक्रांति बहुत ही

लज्जित हुआ और उस डंडे वाले लड़के से पूछने लगा कि बताओ तुम डण्डा कहाँ से लाया करते हो ? हम भी, तुम्हें ला देवें। लड़कों ने देवल बढ़ई का घर बता दिया और सोमक्रांति उसके घर गये बढ़ई ने डण्डे के दाम ले लिये और दूसरे दिन तैयार कर रखनेको कह दिया।

सवेरा होते ही सोमक्रॉति पाठशाला में तो गया परन्तु बढ़ईके यहां से डण्डा लाने की चिन्ता लगी रही इसलिये वह बीच ही में भोजनके बहाने छुट्टी लेकर देवलके घर चला गया, हाथमें भक्तामरजी की पुस्तक लिये हुए था उसे देखकर बढ़ई बोला।

बढ़ई—यह हाथमें क्या लिये हुए हो ?

बालक—जैन-धर्म का पवित्र ग्रन्थ भक्तामर है।

बढ़ई—थोड़ा-सा मुझे भी पढ़कर सुनाओ।

बालक—पांचवां काव्य रिद्धि मन्त्र समेत सुना देता है।

बढ़ई—इस मंत्र का क्या फल है ?

बालक—यह मंत्र मनवाँछित फल का दाता है।

बढ़ई—तब तो आप हमारे ऊपर कृपा करो और मुझे विधिपूर्वक सिखा दो।

बालक—पहिले तुम श्रावक के व्रत लो पीछे मंत्र सीखो।

बढ़ई ने श्रावक के व्रत और जैन-धर्म अंगीकार करके मंत्र सीख लिया और दो डण्डे लाकर एक उस लड़के को देकर दूसरे से आप खेलने लगा।

एक दिन बढ़ई बन की गुफा में गया, पवित्र अङ्ग होकर सीखा हुआ काव्य मंत्र सिद्ध किया। जिसके प्रसादसे सिंह पर बैठी, हाथमें भयंकर सर्प लिये अजिता देवी प्रगट हुई।

देवी—हे वत्स! तू ने किस लिये मेरा आराधन किया है! तेरी जो कुछ इच्छा हो सो मांग।

बढ़ई—मैं दरिद्री हूँ ऐसी कृपा करो जिससे धनलाभ हो।

देवी—देख! यहां से ईशान कोन में वह पीपल का झाड़ है उसके नीचे अटूट धन गड़ा है, तू खोद लेना।

देवी तो स्वर्ग-लोक को चली गई और बढ़ई वहां से करोड़ों की मालियत हीरा आदि जवाहिरात खोद लाया और खाने खर्चमें, आनन्द करने लगा धन सम्पन्न होकर उसने जिन मन्दिर बनवाये और जिनपूजा, दान, पुण्य आदि में बहुत यश प्राप्त किया।

लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने राज्य दरबार में चरचा की कि जो सौभाग्य राजाको प्राप्त नहीं है वह देवल नामके 'कठफार' को प्राप्त है। राजाने देवल को बड़े सन्मान से बुलाया और सब हाल सुनकर वहुत प्रसन्नता प्रगट की।

जैसे दिन देवलके फिरे भगवान सबके फेरें।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥६॥

हूं अल्पवुद्धि, वुधमानवकी हंसीका हूं पात्र, भक्ति तव है मुझको वुलाती ।
जो बोलता मधुर कोकिल है मधुमें, है हेतु आम्रकलिका वस एक उसका ॥६॥

भावार्थ—मैं मन्द ज्ञानी हूं और विद्वानोंके समक्ष हास्यका पात्र हूं तो भी आपकी भक्ति, स्तोत्र रचने के लिये मुझे व.ध्य करती है। कोयल वसन्त × में जो मीठी वाणी वोलती है उसमें आप के वृक्षों का सुन्दर मौर ही कारण है।

६ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो कुट्टवुद्धीण ।

मंत्र—ओं ह्रीं श्रीं श्रूं श्रः ह स थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्या प्रसाद कुरु कुरु स्वाहा ।

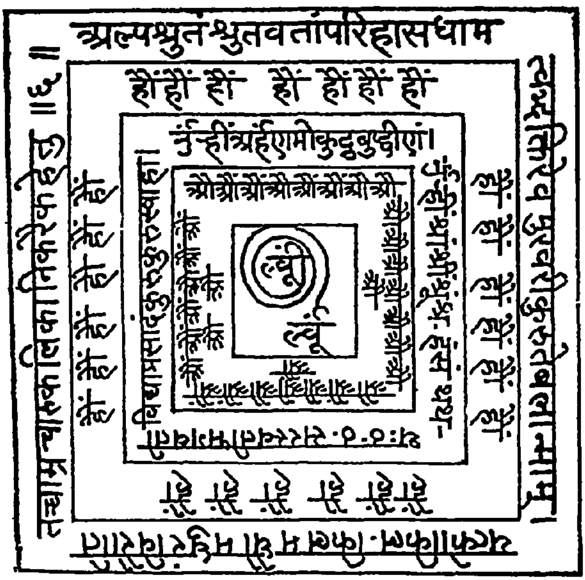

विधी—लाल वस्त्र पहिनकर २१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने और यत्र पास रखने से बहुत शीघ्र विद्या आती है। बिछुड़ा हुआ, आ मिलता है। इस विधिमें फूल लाल हों, धूप कुन्दरू की देवे, पृथ्वीपर सोना और एक भुक्ति करना चाहिये।

× चैत बैसाख ये दो महीने बसन्त ऋतु के हैं।

राजपुत्र भूपाल की कथा

भारतवर्ष में काशी नगर जगत् विख्यात है, परमपूज्य भगवान पार्श्व और सुपार्श्व प्रभुकी जन्म भूमि होनेसे परम पवित्र है। राजा का नाम हेमवाहन था, राजा जैन-धर्मावलम्बी थे। पुण्योदयसे उनके दो पुत्र हुए, मानों उनके घरमें सूर्य, चन्द्र ही अवतरे अथवा जिन भाषित निश्चय और व्यवहार उभयनय ही प्रगट हुए, बड़े का नाम भूपाल और छोटेका भुजपाल था।

ये बालक जब पढ़ने योग्य हुए तब राजाने श्रुतधर पंडित को बुलाया और धनमान से विभूषित करके दोनों बालक विद्याध्ययनके लिये सौंप दिये। यद्यपि गुरू का विद्यादान दोनोंको समदृष्टि से था परन्तु बड़े पुत्र भूपाल को बिलकुल सफलता नहीं हुई। हां! लघुपुत्र भुजपाल पिंगल, व्याकरण, तर्क, न्याय, राज्यनीति, सामुद्रिक ज्योतिष, वैद्यक, शस्त्र, शास्त्र, आदि सभी विद्याओंमें प्रवीण हो गया।

गुरुजी, ज्येष्ठ राजकुमार भूपालके साथ बहुत पढ़ते थे और वह भी स्वयं बहुत परिश्रम करता था, परन्तु मूर्ख ही रहा। कहा भी है-

दोहा---विद्या, विभव, उतंग, कुल और सुजस संसार।
दिये विना नहिं पाइये, बड़े रतन में चार॥
शास्त्र दान दीनौं नहीं, किमि उचरै मुख वैन।
पुनि विद्या पावै कहां, खर सम चितवै नैन॥

अपढ़ रहने से भूपाल कुमार का जहां तहाँ अनादर होता था। राज दरबार, कुटुम्ब परिवार की इनपर हास्यप्रद श्रद्धा

रहती थी। महाराजा हेमवाहन प्रिय भुजपाल पर जितना स्नेह रखते थे उतना ही भूपाल कुमार का उपहास करते थे।

बेचारे निरुपाय भूपाल कुमार, अपनी अशिक्षित दशा से बड़े ही खेद खिन्न रहते थे, दिन रात उन्हें एक ही चिन्ता सताया करती थी एक दिन उन्होंने अपने लघु भ्रात भुजपाल से सलाह ली तो उन्होंने श्रीभक्तामरजी का ६ वां काव्य रिद्धि मन्त्र समेत सिखाकर उसे सिद्ध करने की सम्मति दी। राजकुमार भूपाल एक दिन गंगा नदीके किनारे गये और अंग शुद्धि करके विधिपूर्वक मन्त्र आराधन करने लगे। परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मी देवी प्रगट होकर कहने लगी।

देवी—क्यों रे बालक! तूने मुझे काहेको स्मरण किया है।

बालक—मैं विद्याविहीन हूँ मेरा अज्ञान हटाओ।

देवी—एवमस्तु! तथास्तु!! तेरे मनकी इच्छा पूर्ण होगी।

देवी आशीर्वाद देकर चली गई और भूपाल कुमार धुरन्धर विद्वान् हो गये। उनपर विद्या ऐसी प्रसन्न हुई कि काशी नगर में कोई भी पण्डित उनसे टक्कर नहीं ले सकता था। भाई भुजपाल कुमार और पिता हेमवाहन उनकी विद्यासे बहुत प्रसन्न रहते थे और धन्य धन्य कहते थे।

जिनराज के चरणों के प्रसाद से जैसी विद्या भूपाल को मिली वैसी सब को प्राप्त होवे।

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।

आक्रांतलोक मलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

तेरी किये स्तुति विभो ! बहु जन्मके भी होते विनाश सब पाप मनुष्य के हैं।
भौंरे समान अति श्यामल ज्यों अंधेरा होता विनाश रविके करसे निशाका ॥७॥

भावार्थ--हे प्रभु ! जिस प्रकार सूर्य्य की किरणों से, सम्पूर्ण लोक में व्याप्त, भौंरा समान काला, रात्रि का अन्धकार अति शीघ्र मिट जाता है। उसी प्रकार आपके स्तवनसे जीवों के संसार परम्परासे बंधे हुए पाप क्षण भर में नाश हो जाते हैं।

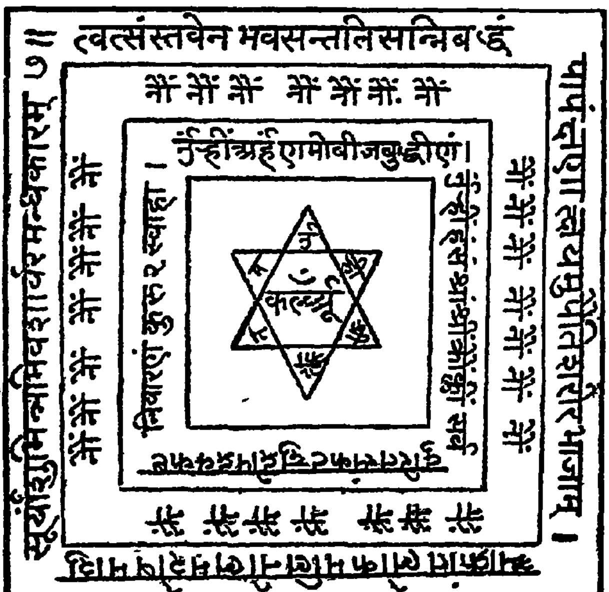

७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीज बुद्धीणं। मंत्र–ॐ ह्रीं हं सं श्रां क्रौं क्रौं क्लीं सर्व-दुरित संकटक्षुद्रोप-द्रव कष्ट निवारणं कुरु कुरु स्वाहा। विधि–हरे रंग की मालासे २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने और यत्र गलेमें बांधने से सर्प का विष उतर जाता है तथा किसी प्रकारका विष नहीं चढ़ता। इसके सिवाय ऋद्धि मंत्र द्वारा १०८ बार कंकरी मन्त्रित करके सर्पके सिरपर मारने से सर्प कीलित हो जाता है। इस विधिमें माला हरी और धूप लोभान की हो।

श्रेष्ठिपुत्र रतिशेखर की कथा

पटना नगर में राजा धर्मपाल राज्य करते थे वे बड़े ही न्याय शील और धर्मात्मा थे। उसी शहर में बुद्ध नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे। सेठजी के एक रतिशेखर नाम का पुत्र था वह बड़ा ही रूपवान और विनयवान था, श्रीमती नाम की अर्जिका के पास उसने खूब विद्याध्ययन किया था। व्याकरण, कोष, सिद्धान्त और मन्त्र यन्त्र में रतिशेखर ने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

पटना नगर के बाहर एक भेषी तपस्वी रहता था। वह महामिथ्याती, पाखण्डी और चारित्रहीन था। उसने कुछ कुदेवों की आराधना कर रक्खी थी इसलिये पटना नगर में मन्त्र विद्या में उसकी ख्याति हो गई थी, यहां तक कि राजा धर्मपाल भी उसकी सेवामें रहते थे और बड़ी विनय-सुश्रूषा किया करते थे। उस पाखण्डी का नाम धूलिया था। चेला-चांटी भी उसके पास एक दो रहा करते थे।

एक दिन उस मिथ्यादृष्टि का एक शिष्य "लोभी गुरु लालची चेला" की उक्तिवाला वहां से निकला कि जहां रति-शेखर कुमार मन्दिर में विद्याध्ययन करते थे। रतिशेखर ने इस कुसाधु भेषधारी चेला की बात भी न पूछी, तिसपर उसे बहुत बुरा लगा।

ज्योंही वह अपने तपस्वी गुरुके पास गया त्योंही रतिशेखर के विरुद्ध बहुत-सी उल्टी सीधी जमाई कि रतिशेखरने हमारा

बड़ा अनादर किया है, इस पर वह कुसाधु बड़ा कुपित हुआ और बेताली विद्यासे एक देवी को बुलाकर उसे रतिशेखरको मारने को भेजा, देवी वहां तक गई तो अवश्य, परन्तु महा जिनधर्मी उस बालकके पुण्य के आगे वह कांपने लगी और लौटकर तपस्वी से कहने लगी।

देवी—अरे मूर्ख वह जैन-धर्मी है उसके मारने को मैं वा तू समर्थ नहीं है, अगर वह करुणानिधान बालक आज्ञा देवे तो मैं तेरा ही सर्वनाश करने के लिये तत्पर हूँ।

तपस्वी—हाथ जोड़कर, माता ! रोष मत करो, कमसे कम इतना तो करो कि, रतिशेखरके घरपर खूब धूल बरसाओ।

देवी रतिशेखर के घर गई और—

चौबोला। रतिशेखर मन्दिर के ऊपर, भई धूर बहु वृन्दा।
दशों दिशा छाई धूरासों, दुरे गगन गन चन्दा॥
उठ्यो प्रात सामायक कारण, रतिशेखर यों देखै।
चहूँ ओर है अति अंधियारी, बरसत धूल विशेखै॥

यह हाल देखकर घर के लोग तो बड़े घबड़ाये परन्तु वह धीर-वीर रतिशेखर जान गया कि यह करतूत उसी कुलिंगी की है। वह नदी किनारे गया और स्नान आदि से शुद्ध हो करके सातवें काव्य मंत्र की आराधना शुरू कर दी, जिससे 'जंभादेवी' प्रसन्न हुई और बेताली के ऊपर दौड़ी गई। कहने लगी अरी रांड़ ! जैनमती को त्रास देती है ! फिर क्या था,

बेताली वहां से भाग गई, पर उसी नीच साधु के ऊपर धूल वृष्टि करके कहने लगी—

चौपाई—अरे दुष्ट पठई मुहि कहाँ। मान भंग मेरो भयो जहां॥
अब मैं तहंते भागी आय। तोहि जमालय देहुं पठाय॥
तू रतिशेखरके ढिग जाय। जंभासों सब क्षमा कराय॥

निदान बेताली के कहने से वह तापसी रतिशेखर के घर गया जहां जंभा देवी प्रगट बैठी थी। बारम्बार विनय स्तवन करके तापसी ने रतिशेखर से क्षमा प्रार्थना की और श्रावक के व्रत अंगोकार किये, राजाने भी जैन-धर्म ग्रहण किया। पश्चात् देवी स्वर्ग धाम को चली गई।

देखो, जैन धर्म के प्रसाद से एक बालक ने ही उस जोगी को पापों से बचा लिया।

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

यों मानकर स्तुति शुरू की मुझ अल्पधीने, तेरे प्रभाववश नाथ! वही हरेगी।
सल्लोकके हृदयको, जलबिन्दु भी तो मोती समान नलिनीदलपै सुहाते ॥८॥

भावार्थ—हे नाथ! पानीकी छोटी-सी बूंद कमलिनीके पत्र पर पड़नेसे मोतीकी शोभाको प्राप्त होती है, उसी प्रकार यद्यपि मैं तुच्छ

बुद्धि हूं तो भी यह आपका स्तोत्र आपके प्रभावसे सज्जनोंके चित्तको हरण करेगा।

८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणु सारिणं।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रति-चक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ ह्रीं लक्ष्मण रामचंद्रदेव्यै नमः स्वाहा।

विधि—अरीठाके बीजकी मालासे २१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने और यंत्र पासमें रखने से सब प्रकारका अरिष्ट दूर होता है। तथा नमककी ७ डली लेकर एक एकको एक बार मंत्रित करके किसी पीडित अंगको झाड़नेसे पीड़ा मिट जाती है। इस विधिमें धूप गुग्गलकी हो और नमक की डलीको होम में रखना चाहिये।

सेठ धनपाल की कथा

कंचन देश में एक बसन्तपुर नगर था। वहां एक धनपाल नाम का वैश्य रहता था, वह बड़ा धर्मात्मा और पापभीरु था। उसकी स्त्री गुणवती पूरी गुणवती थी, परन्तु धन सन्तान के अभाव में बेचारे ये दोनों दुखी रहते थे।

भाग्यवशात एक दिन चन्द्रकीर्ति और महिकीर्ति मुनि

युगल विहार करते हुए सेठ धनपाल के दरवाजे से निकले। उसने उन्हें आदर पूर्वक पड़गाहा और नवधा-भक्ति पूर्वक आहार दिया। ठीक ही है समदर्शी जैनमुनि सधन निर्धन सभी का घर पवित्र करते हैं।

निःअन्तराय आहार देने के पश्चात सेठ की धर्मपत्नी ने मुनिराज से विनय पूर्वक पूछा कि स्वामी! मुझे कर्म ने दोनों प्रकार से मारा है प्रथम तो निधनता पीस रही है दूसरे सन्तान हीनता से दुखित रहती हूं सो स्वामिन! ऐसी कृपा करो कि दो में से एक भी तो संकट निवारण हो। कृपालु मुनिराज ने श्रीभक्तामरजी का नौवां काव्य, मन्त्र विधि समेत सेठ धनपाल को सिखाकर प्रस्थान किया—

एकान्त स्थान में तीन दिन रात पर्यंक-आसन से सेठ धनपाल ने मन्त्र की आराधना की तो महिदेवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई

अहो साध मैं पूछौं तोहि। किहिकारण आराधी मोहि॥
इच्छा होय सो पूरन करौं। जन्म जन्मके दुःख सब हरौं॥ १॥

धनपाल— चौपाई

कहै धनपाल सुनो हो माय। धन कारन आराधी आय
जो मुझ माय कृपा अव करो। तो मेरौ दुःख दारिद्र हरो॥१॥

देवी— चौपाई

पूजा करौ जिनेश्वर तनी। दिन प्रति संपति बाढ़ै घनी॥
पूजा तें हौ लक्ष अपार। और सुजस बाढ़ै संसार॥ १॥

देवीने जिनपूजा का उपदेश करके और देवीपुनीत एक सुन्दर सिंहासन भेंट करके देवलोक को चली गई और सेठ धनपालजी जिनपूजा में त्रिकाल रहने लगे।

दोहा

महामन्त्र परभावतें, भई लक्ष घर माहिं।
दिन दिन बाढ़त चन्द्रसम, यामें संशय नाहिं॥

जब वहां के राजा सिद्धिधर ने सुना कि जो नाम का तो धनपाल था, पर निरा धनहीन था वह बड़ा ही धनाढ्य हो गया है तब वे बड़े विस्मित हुए। एक दिन वे स्वयम् सेठ धनपालजी के घर गये देवी द्वारा भेंट में प्राप्त सिंहासन देख बड़े प्रसन्न हुए राजा के कहने सेठ धनपाल ने सिंहासन पर श्रीजिनेन्द्र की पूजा की तो पुनः महादेवी नृत्य करती हुई प्रगट हो गई, जिसे देखकर राजा को जैन धर्म पर दृढ़ विश्वास हो गया। देवी जैन-धर्मको सर्वोपरि कहके देवलोकको चली गई और राजा ने प्रजा समेत जैन-धर्म को अंगीकार किया।

आस्तां तवस्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि॥९॥

निर्दोष दूर हो तव स्तुतिका बनाना, तेरी कथा तक हरे जगके अघों को।
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही अच्छे प्रफुल्लित सरोजनको सरों में॥९॥

भावार्थ—हे भगवन्! सूरज तो दूर रहो, उसकी प्रभा ही तालाब के कमलोंको विकसित कर देती है। उसी प्रकार आपका निर्दोष स्तोत्र तो दूर रहो, आपकी इस परभव सम्बन्धी कथा ही जगज्जीवोंके पापों को दूर करती है।

९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो अरहंताण णमोसभिण्ण सोद-ह्रां ह्रीं ह्रू फट् राणं स्वाहा।

मंत्र....ओं ह्रीं श्री क्रौं क्ष्वीं रः रः हं हः नमः स्वाहा।

विधि ...चार कंकरी एकसौ आठ बार मत्र कर चारों दिशाओं में फेंकने से रास्ता कीलित हो जाता है। कोई भी प्रकारका भय नहीं रहता चोरी, नहीं कर पाता।

महारानी हेमश्री की कथा

कामरू देश की भद्रा नगरी में राजा हेमब्रह्म रहते थे उनकी आज्ञाकारिणी भार्याका नाम हेमश्री था, वे उभय दम्पति जैन धर्म के सच्चे श्रद्धानी और नीतिपरायण थे

एक दिन ये दोनों वन-क्रीड़ा को गये वहां एक वीतरागी महामुनिराज के दर्शन किये।

चौपाई--भक्ति सहित गुरुकी स्तुति करी। जनम सफल मानों तिहिघरी॥
धन्य भाग गुरु दर्शन दयो। मेरो पाप जनमको गयो॥

महाराज हेमब्रह्म और तो सब प्रकार से सम्पन्न थे परन्तु सन्तान के अभाव में सदा व्याकुल रहते थे इसलिये दोनों राजा और रानी ने मुनिराज से निवेदन किया—

राजा— चौपाई

जब देखों काहूको बाल। तब मेरे मन उपजै शाल
यह दुःख बचतें कहो न जाय। किये कौन अघ हम मुनिराय॥

मुनि— चौपाई

श्री अरहन्त देव नहिं जान। जिन गुरुकी मानी नहिं आन॥
अरु सिद्धान्त शास्त्र नहिं सुने। संतति होय न तेही गुने॥ १॥
पुष्पवती जो नारी होय। श्री जिन मन्दिर पहुंचे सोय॥
अपनो धरम गमावै जोय। संतति मुख देखै नहिं कोय॥२॥
जो पशु पंछी जीव अपार। तिनकी दया न कीनी सार॥
पूजे जाय कुदेवन पाय। यातैं पुत्र बिहूने थाय॥ ३॥

रानी-- दोहा।

बहुत पाप हमने किये, सो वरनै मुनिराय।
जातैं कटैं कलंक सब, सो गुरु कहो उपाय॥

मुनि— चौपाई।

प्रथम एक जिन मन्दिर करौ। तापर कनक कलश विस्तरौ॥
अरुण ध्वजा चहुंदिशि फरहरौ। छत्र चमर सिंहासन करौ॥१॥
बांधौ तौरण बन्धनवार। मंगल द्रव्य आदि भृंगार॥
पुनि चौबीसों बिम्ब धराय। रतन रूप्य कलधौत कराय॥२॥

करौ प्रतिष्ठा मनवचकाय। भक्ति सहित चव संघ बुलाय॥
चार दान दीजे सुख दाय। इहि विधिसों सब पातक जाय॥३॥

इसके सिवाय इतना और करो कि सोने वा चांदी अथवा कांसे की थाली में श्री भक्तामरजी का नवमा काव्य केशर चन्दन से लिखो और उसे पानी में धोकर बड़े प्रेम पूर्वक पी लिया करो।

वन बिहारी मुनिराज तो विहार कर गये और राजा रानी ने घर आकर वैसा ही किया। पुण्य की जड़ पाताल तक रहती है रानी हेमब्रह्मश्री के गर्भ में बालक आया, नव महीने उपरान्त माता पिता को हर्ष दायक पुत्र हुआ।

भक्तामर के मन्त्रों का ऐसा ही अचिन्त्य प्रभाव है।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ।
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥१०॥

आश्चर्य क्या भुवनरत्न, भले गुणोंसे, तेरी किये स्तुति बने तुझसे मनुष्य।
क्या काम है जगतमें उन मालिकोंका, जो आत्म-तुल्य न करें निज आश्रितोंको॥१०॥

भावार्थ--हे जगतके भूषण रूप भगवन्! संसारमें आपके सत्य और महान गुणोंकी स्तुति करने वाले मनुष्य आप ही के समान हो जाते हैं सो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। क्योंकि जो कोई स्वामी

अपने आश्रित पुरुषका विभूतिके द्वारा अपने समान नहीं करता है तो उसके स्वामीपनेसे क्या लाभ है ? अर्थात कुछ भी नहीं ।

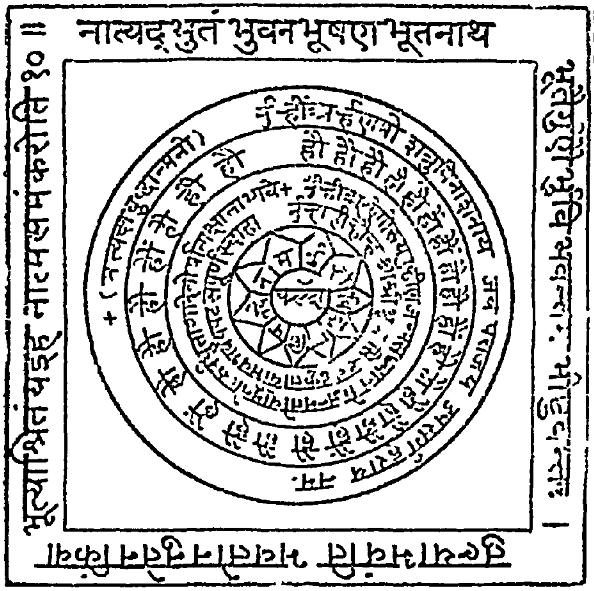

१० ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धीण ।

मंत्र-जन्म सध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादिनोर्यानाक्षान्तामावे प्रत्यक्षो बुद्धान्मनो ओं ह्रीं ह्. ह्रां ह्रीं श्रां श्रृ श्रः सिद्धबुद्धकृताभों भव भव वषट् सम्पूर्णं स्वाहा ।

विधि - उक्त ऋद्धि मंत्र की आराधना से तथा यंत्र पासमें रखनेसे कुत्तेका विष उतरत्ता है और नमककी ७ डली लेकर प्रत्येक को १०८ वार मन्त्र कर खाने से कुत्तेके विषका असर नहीं होता । धूप कुंदरु की हो । ७ या १० दिन तक १०८ वार जपना चाहिये ।

श्रीदत्त वैश्य की कथा

पूर्व बंगाल में सुभद्रा नाम की महानगरी थी, वहां एक श्रीदत्त नामक वैश्य रहता था, वह धनके अभावमें दरिद्री था ।

एक दिन सकल संजयधारी मुनिराज आहार के लिये उस नगर में पधारे, वहांके राजा नरवाहनने भक्ति पूर्वक आहार दिया, मुनि महाराज आहार करके जा रहे थे कि उस श्रीदत्त नामके

वैश्य ने उन महात्माजी के चरण पकड़ लिये और कहने लगा—

चौ०—मैं परदेश फिर्‌यौं चिरकाल। द्रव्य हेतु भटक्यौ वेहाल॥
पंथ माँहि मोकौं भय लगै। देहु मंत्र जासौं भय भगै॥ १॥

तब उन कृपालु मुनिराज ने सर्व भयभंजन १० वां काव्य उसे सिखा दिया और विहार कर गये।

श्रीदत्त वणिक मंडली समेत परदेशको जा रहा था कि---

चौ०—चलत पंथ भूलौ वह जाय। परौ भयानक वनमें आय॥
एक सिंह तहं पहुंचौ जाय। क्षुधित महा बहु विधि विललाय॥
गरजै शव्द करै विकरार। गजगनकौ मद भंजर हार॥
जम सम आवत देखौ जबै। विह्वल भगे सकल जन तबै॥ २॥
सुमरो काव्य मन्त्र तिहि वार। श्री जिनवर आदीश्वर सार॥
सुमरत सिंह भगौ ततकाल। छिन में नाश भयो वह शाल॥ ३॥

संकट तो कट गया परन्तु वे लोग रास्ता भूल गये और बड़े ही आकुलित हुए। तब श्रीदत्तने पुनः मंत्र स्मरण किया और उसके प्रभावसे एक जिन चैत्यालय दिखाई दिया उसकी ओर चलते चलते ठिकाने लग गये, वहां पहुंचकर भावपूर्वक जिन बन्दनाकी।

चैत्यालय के पास में एक जोगी बैठा हुआ था सो इन्हें देखकर वह कहने लगा।

जोगी—तुम कौन हो? क्यों और कहां से आये हो?

श्रीदत्त—मैं सुभद्रनगर निवासी श्रीदत्त नाम का वैश्य

हूँ । दारिद्रजन्य दुःखसे दुःखित, धन की खोजमें निकला हूँ ।

जोगी—यहां थोड़ी दूर रसकूप है, उस रस को तांबे पर डालने से वह कंचन हो जाता है । तू चल उसमें से हम रस निकलवा देंगे और बराबर बांट लेंगे ।

श्रीदत्त—अच्छा महाराज चलिये । (दोनों जाते हैं)

जोगी ने एक चौकी पर बैठा के चारों कोनों पर रस्सी बांध के और साथ में रीती तुम्बी दे के श्रीदत्त को कुए में उतार दिया । तुम्बी भरकर श्रीदत्त ने खींचने को कहा और जोगी ने तूम्बी खींच ली । पश्चात दूसरी तूम्बी लटका के जोगी ने आवाज दी कि एक तूम्बी और आने दो श्रीदत्त ने वह भी भर दी । पश्चात चौकी पर श्रीदत्त को बैठा के खींचता जाता है और आप विचारता है कि आधा रस इसे देना पड़ेगा इसलिये रस्सियां काट के जोगी रफुचक्कर हो गया और बेचारा श्रीदत्त धड़ाम से कुए में गिर पड़ा ।

विपत्ति के मारे श्रीदत्त ने काव्य का जाप करके देवी का स्मरण किया । तत्काल देवी दौड़ी आई और श्रीदत्त को उस महाकूप से निकाल कर बड़े सन्मान के साथ बहुतसा द्रव्य देकर घर को बिदा किया और आप देव लोक को चली गई ।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।

पीत्वा पयःशशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥११॥

अत्यन्त सुन्दर विभो तुझको विलोक अन्यत्र आंख लगती नहि मानवों की।
क्षीराब्धिका मधुर सुन्दर वारि पीके, पीना चहे जलधिका जल कौन खारा ॥११॥

भावार्थ—हे भगवान! टिमकार वर्जित नेत्रोंसे सदा देखने योग्य ऐसे आपको देखकर मनुष्योंके नेत्र अन्य देवों मे संतोषित नहीं होते हैं। क्यों कि ऐसा कौन पुरुष है जो चन्द्रकिरण समान उज्ज्वल ऐसे क्षीरसमुद्रका जल पीनेपर फिर समुद्र के खारे पानीकी इच्छा करेगा।

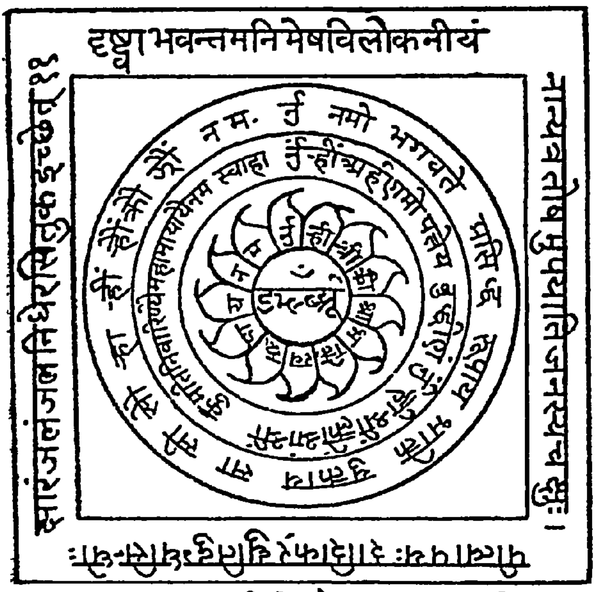

११ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं।

मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं श्रीं श्रीं कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा

विधि स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिरे और दीप, धूप, नैवेद्य, फल लिये प्रसन्न चित्तसे खड़े रहकर सफेद मालासे १०८ वार जपने से और यन्त्र पास रखने से जिसे बुलानेकी इच्छा हो वह आ सकता है। लाल मालासे २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार जपने से भी उपर्युक्त फल होता है। इस विधिमे धूप कुंदरूकी होना चाहिये।

राजपुत्र तुरंग की कथा

जिस समय की यह कथा है उस समय रतनावती पुरी में राजा रुद्रसेन राज्य करते थे उनकी प्राण प्यारी भार्या का नाम सुधर्मा था। उनके एक पुत्र था उसका नाम तुरंगकुमार था।

प्रिय तुरंगकुमार ने काबेरी नदी के किनारे एक अति रमणीक बगीचा बनवाया था। उसकी मनोहर क्यारियाँ, हरे हरे अंकुर, रंगबिरंगे फूल और स्वादिष्ट फल, नन्दन बन की समता करते थे जहां तहां विश्राम भूमि और चित्रशालाएं कुबेर की कृति का दिग्दर्शन कराती थीं। यह सब था परन्तु 'सौ गुन पै इक औगुन फीको' वाली बात थी वह यह कि उस बाग में जो बावडी थी उसका पानी बहुत ही खारा था मानो उसका झरना सीधा 'लवण समुद्र' से ही लग रहा था। उन्होंने मंत्र, जंत्र, तंत्र, होम, आराधन आदि अनेक उपचार किये किन्तु सफलता नहीं हुई। विचारे तुरंगकुमार को इस बात का बड़ा ही दुःख रहता था और दिन रात इसी चिन्तासे चिन्तित रहते थे। पुत्र की इस चिन्ता से महाराज रुद्रसेन और उनकी शील धुरन्धर भार्या सुधर्मा सती को अहो रात्रि बड़ा खटका लगा रहता था। एक दिन वे स्वामी चन्द्रकीर्ति मुनि की बन्दना को गये।

अडिल्ल—बन्दे शीश नमाय, पाय मुनि रायके।
कर नमोस्तु त्रयवार, चरन लव लाय के॥

धरम बुद्धि मुनिराय, दई भूपालको ॥
समाधान सब पूछि, सो बाल गुपालको ॥ १ ॥
पुनि मुनिनायक धर्म, अमोल बखांनियो ।
शिव सुखदायक धर्म, दसौं विधि जानियो ॥
पालो शक्ति प्रमान, सुनिहचौ राखहीं ।
सुनै वैन भूपाल, मुनीसुर भाखहीं ॥ २ ॥

मुनिराज का धर्मोपदेश समाप्त हो जाने के अनन्तर राजा रुद्रसेन ने प्रार्थना की :-

राजा— चौपाई

मो सुत एक वावरी करी । सो निकरी खारे जल भरी ॥
कोटि उपाय वादि ही गयो । वाको जल मीठो नहिं भयो ॥ १ ॥
व्यन्तर यच्छ मनाये घने । देवी दानव पितर दासने ॥
अब स्वामी उपदेश कराव । जातें जल मीठो ह्वै जाव ॥ २ ॥

मुनि— चौपाई

प्रथमहिं जिन स्नान कराय । पंचामृत की धार दिवाय ॥
पंच कलश कंचन के करो । ते वाही जल सेती भरौ ॥ १ ॥
ते जिन ऊपर ढारौ आय आनन्द मंगल हर्ष बढ़ाय ॥
मुनिवर साधु मिले जो कोय । अति आदर सों ल्यावहु सोय ।२।
सो ही जल सों पाक करेहु । सो मुनिवर के अग्र धरेहु ॥
सो वह जल मुनिके परसाद । छिनमें आवै अमृत स्वाद ॥ ३ ॥

राजा रुद्रसेन मुनिराजको नमस्कार करके घर पर चले आये

और उनकी आज्ञानुसार चलने लगे, एक दिन सकल संयमी मुनि आहार को पधारे सो भक्ति पूर्वक निरन्तराय आहार के अनन्तर मुनिराज ने बावड़ीके पास खड़े होकर श्री भक्तामरजी का ११ वां काव्य पढ़ा जिसके प्रभाव से बावड़ी का जल मिष्ट और स्वादिष्ट हो गया मानो 'छीरसागर' ही भर रहा है।

मुनिराज ने तुरंगकुमार को भी इस मन्त्र की विधि बतला दी जिसको उसने साहस पूर्वक आराधन किया तो बनदेवी ने प्रगट होकर कहा कि हे वत्स! तेरी क्या इच्छा है? तुरंगकुमार ने कहा मेरी बावड़ी का पानी मीठा बना रहे, देवी एवमस्तु कहके अन्तर्धान हो गई।

सारांश मन्त्र के प्रसाद से विष भी अमृत हो जाता है फिर पानी का मीठा हो जाना तो एक साधारण बात है।

यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापित स्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

जो शान्तिके सुपरमाणु प्रभो! तनूमें तेरे लगे, जगतमें उतने वही थे।
सौन्दर्यसार, जगदीश्वर, चित्तहर्ता, तेरे समान इससे नहिं रूप कोई ॥१२॥

भावार्थ....हे त्रैलोक्य शिरोमणि भगवान! जिन शान्त भावोंकी छायारूप परमाणुओं से आप रचे गये हैं, वे परमाणु उतने ही थे। क्योंकि आपके समान रूप पृथ्वी में दूसरा नहीं है।

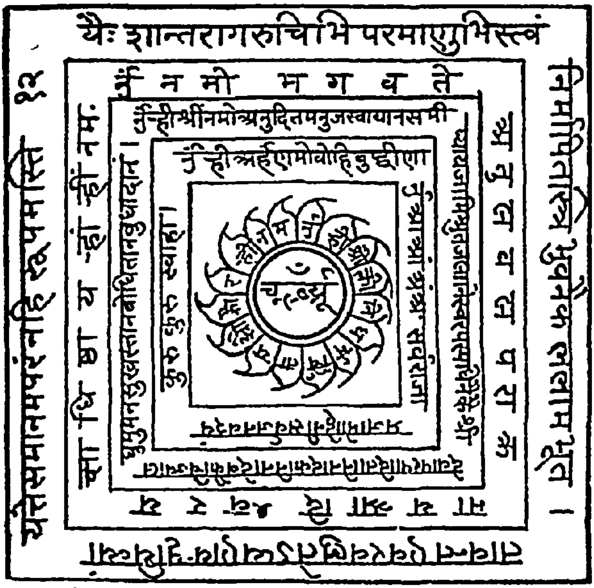

१२ ऋद्धि....ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहिबुद्धीणं।
मंत्र—ओं आं आं अः अः सर्व राजा-प्रजा मोहिनी सर्व जनवश्यं कुरुकुरु स्वाहा।
विधि—यन्त्र पास रखने और १०८ वार उक्त मंत्र द्वारा तेल मंत्रित करके हाथी को पिलाने से उसका मद उतर जाता है। ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे करना चाहिये और धूप दशांगी हो।

मंत्री पुत्र महीचन्दकी कथा

अहल्यापुर नगर में राजा कुमारपाल रहते थे, उनके राज्य मन्त्री का नाम विलासचन्द्र था, मन्त्रीजी के पुत्र का नाम महीचन्द्र था। प्रिय महीचन्द्र की एक वैश्य पुत्र के साथ बडी गहरी मित्रता थी, एक दिन इन दोनों ने वन में विराजे हुए मुनि महाराज के दर्शन किये और प्रार्थना की—

चौ०--जो स्वामी तुम कृपा करेहु। अद्भुत मन्त्र हमें इक देहु॥
जातें कौतुक होय अपार। जैन धरम परकाशन हार॥

मुनि—तब मुनि कहें सुनो हो वच्छ। भक्तामरका मन्त्र प्रतच्छ॥
सो तुम साधो मन बचकाय। मन वांछित पूरन सुखदाय॥

कृपालु मुनीश्वर ने, श्रीभक्तामरजीका बारहवाँ काव्य विधि समेत दोनों को सिखा दिया। वणिक पुत्र तो मात्र सीख के ही रह गया परन्तु मन्त्री पुत्र महीचन्द्र ने ७ दिन तक मंत्र की आराधना की तब महादेवी प्रगट हुई और कहने लगी।

देवी— चौपाई

मांग मांग जो इच्छा होय। कौन काज आकर्षी मोय ?
जनम तनौं तेरो दुख हरौं। कहै काज सो बेगहिं करौं॥

मन्त्री पुत्र— दोहा

जैन धरम जातैं बढ़ै, बढ़ै दया को अंग।
ऐसो वर मोहि दीजिये, वचन न होवै भंग॥

देवी तो आशीर्वाद देके चली गई और जब मन्त्री पुत्र गया तो देखता क्या है कि उसके घर पर कामधेनु (गाय) खड़ी हुई है। लोग देखकर आश्चर्य करने लगे तब देवी ने प्रगट होकर कहा—

चौ०—याको पय सींचो जहां जाय। देव करें तहँ कौतुक आय॥
मन वांछित सब पूरन करै। रिद्धि सिद्धि नव निधि आचरै॥

इसकी मन्त्रीपुत्र ने परीक्षा की और कामधेनु का थोड़ासा दूध निकाल के मिट्टी के घड़ेपर छोड़ दिया तो वह तत्काल सोने का हो गया। फिर चमत्कार दिखाने के लिये वही दूध अपने घर के चौके में डाल दिया तो भांति भांति के पकवान तैयार हो गये, हजारों स्त्री पुरुषों को जिमाया पर भण्डार भरपूर ही रहा। जब यह समाचार राजा कुमारपाल ने सुने तब

उन्होंने मंत्री पुत्रको बड़े प्यार से बुलाया और अपनी श्रीमती रानी सरूपा के पास भेज दिया। महारानी ने प्रिय मन्त्री पुत्र पर बड़ा स्नेह जनाया और कहा---

रानी···· चौपाई।

मेरी कुक्ष पुत्र नहिं होय। मोसों बांझ कहें सब कोय ॥
जो यह इच्छा पूरन करौ। तो जगमें बहुजस विस्तरौ ॥

मंत्रीपुत्र—मिथ्या धरम छोड़ तुम देव। जैन धरमकी कीजै सेव ॥
श्रावकव्रत पुनि लेहु बनाय। जामें जीव दया अधिकाय ॥

राजा और रानी ने बड़ी भक्ति और विश्वास पूर्वक जैन धर्म अंगीकार किया।

चौ०.. तब मन्त्री सुत कैसी कियो। देवीको आकर्षण लियौ ॥
रानी कुक्ष सुगर्भित हियौ। रानी नृप आनिन्दित हियौ ॥
सुखसौं बीत गये नव मास। जन्म्यौ सुत सौ भयौ हुलास ॥
दिन दिन बाल बढ़ै ज्यौं चन्द। मातुपिता मन होय आनंद ॥
बड़ो भयो विद्या पढ़ गयो। जिनमत धीर धुरन्धर भयौ ॥

दोहा—जो कोऊ याकौं पढ़ै, और सुनै दै कान।
सकल सिद्धि ताकौं मिलै, अजर अमर पद थान ॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेष निर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम्।१३।

तेरा कहां मुख सुरादिक नेत्ररम्य, सर्वोपमान-विजयी जगदीश नाथ।
त्योंही कलंकित कहां वह चन्द्र-बिम्ब, जो हो पड़े दिवसमें द्युतिहीन फीका ॥१३॥

भावार्थ--हे नाथ! देव मनुष्य और नागेन्द्रों के नेत्रोंको हरण करनेवाला, और तीन लोककी उपमाएं कमल,चन्द्रमा, दर्पण आदिको जीतनेवाला कहां तो आपका मुख, और कलंक से मलिन चन्द्र मंडल. जो दिनको छेवलेके पत्ते के समान सफेद हो जाता है। सारांश! सदा प्रकाशमान और निष्कलंक आपके मुखको चन्द्रमाकी उपमा नहीं दी जा सकती।

१३ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं।

मंत्र—ओं ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहिनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि--यंत्र पास रखने और ७ कांकरी लेकर प्रत्येक को १०८ वार मन्त्रितकर चारों ओर फेंकने से चोर, चोरी नहीं करने पाते और रास्ते में किसी प्रकारका भय नहीं रहता। पीली मालासे ७ दिनतक प्रति दिन १००० जाप करना चाहिये। धूप कुन्दरू की हो,पृथ्वीपर सोना और एक भुक्ति करना चाहिये।

श्रीसुमतिचन्द्र मन्त्रीकी कथा

अंग देश में चम्पावती नाम की नगरी थी वहां कर्ण नाम

के राजा राज्य करते थे उनकी रूपवती स्त्री का नाम विशनावती था वह महा मिथ्यातिनी और कुशीलनी थी।

एक दिन कपाली नाम का जोगी रानी के पास आया तब रानी ने बड़ी विनय के साथ उससे कहा—

रानी— चौपाई।

दो पिशाचिनी विद्या मोय। तौ मैं सतगुरु मानौं तोय॥
जोगी—पहिले दीजे मधु की धार। पुनि महिषा कीजे संघार॥
पहिली रजस्वलाको वस्त्र। कर त्रिशूल ले बैठे तत्र॥
भूमि मसान अमावस रात। मंत्र पढ़े इकलख इह भाति॥
माला गरें हाड़की लेय। होमे मास जीव बलि देय॥
मन शंका न करै कछु दक्ष। तब पिशाच्चिनी होय प्रतच्छ॥

इस प्रकार की विधि समेत पिशाचिनी विद्या, रानी को सिखाके विदा मांग कर गया और रानीने एक महीने पर्यन्त चेष्टा करके पिशाच्चिनी देवीको वशमें कर लिया।

चम्पावती नरेश के दरबार में सुमति नामके मंत्री थे वे वास्तविक सुमति ही थे, वे सच्चे जैनधर्मी सद्‌ग्रहस्थ थे, एक दिन राजाने राज्य सभा में धार्मिक चर्चा छेड़ दी तब मन्त्री जीने कहा—

मन्त्री— चौपाई।

मन्त्री कहै सुनो हो राय। धर्म मूल करुणा ठहराय॥
सब धर्मनकौ करुणा मूल। हिंसा सकल पाप अनुकूल॥१॥
ज्यों जहाज बिन उदधि न तरै। त्यों करुणा बिन धरम न धरै॥
भूपन में चक्रेसुर जेम। सब धरमोंमें करुणा तेम॥२॥

जैन धरम उत्तम जग मांहि। यामें संशय कीजे नाहिं॥
जैन शास्त्र के बिन अभ्यास। धर्म न क्यों हू आवै पास॥३॥

राजा— दोहा।

तब राजा उत्तर दियो, वृथा कही यह बात।
वैष्णव धर्म जगत में, है उत्तम विख्यात॥ १॥
जो नर विष्णू को भजे, पंडित पूज्य कहाय।
विष्णु जोति जगमें जगे, विष्णु लोकको जाय॥२॥

इतना कहके राजा दरबार से उठ गये, वे बड़े ही क्रोधित चित्त थे। राजाकी ऐसी कुपित दृष्टि देख रानीने कारण पूछा।

रानी— अडिल्ल।

काहे प्रभु दिलगीर, सो मोहि बताइये।
बिन बोले महाराज, न मनकी पाइये॥
राजा—मंत्री है अति नीच, सुबुधि मद धारिकें।
पोषै अपनो धरम, हमारो टारिकें॥ १॥

रानी— सोरठा।

हे राजन के राय, मनमें खेद न कीजिये।
अबही देहुं दिखाय, मेरे गर्व प्रहारिनी॥

वह झटसे श्मशान में गई और पिशाचिनी को चितारा तो वह तत्काल प्रकट हो आई।

रानी— चौबोला।

ए माता सेना सब अपनी, लीजे बेग बुलाई।
हमरो शत्रु सुमति मंत्री है, ताहि विदारो जाई॥

एक सहस बहु भूत-प्रेत संग, लेहु दुष्ट अति माई ।
शब्द करें जो भीम भयंकर, सुमति मंत्रि घर जाई ॥१॥

तब वह पिशाचिनी और उसके साथी बड़ा रौद्ररूप करके त्रिशूल, गदा, चक्र आदि लेकर सुमति मंत्री पर दौड़े गये और नाना विक्रियाएं करके डरवाया तब उस विद्वानने श्रीभक्तामरजी का १३ वां काव्य आराधन किया जिससे रोहिनी देवीने प्रगट होकर पिशाचिनी आदिको पकड़ कर बाँध लिया और प्राण लेनेको तत्पर हुई, पीछे कृपालु सुमतिके कहनेसे छोड़ दिया और देव लोकको सिधारी।

सम्पूर्ण मण्डलशशाङ्ककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयतिसंचरतो यथेष्टं॥१४॥

अत्यन्त सुन्दर कलानिधिकी कलासे, तेरे मनोज्ञ गुण नाथ फिरें जगों में ।
है आसरा त्रिजगदीश्वरका जिन्होंको रोके उन्हें त्रिजगमें फिरते न कोई ॥१४॥

भावार्थ—हे त्रिलोकीनाथ ! पूर्णमासीके चन्द्र कलाओं के समान उज्ज्वल ऐसे आपके गुण तीन लोकमें व्याप्त है। क्योंकि जो आप जैसे स्वामीका आश्रय प्राप्त है उन्हें स्वेच्छानुसार विचरने से कौन रोक सकता है ? साराश ! जिन गुणोंने आपका आश्रय पा लिया है उन्हीं से त्रैलोक व्याप्त है ।

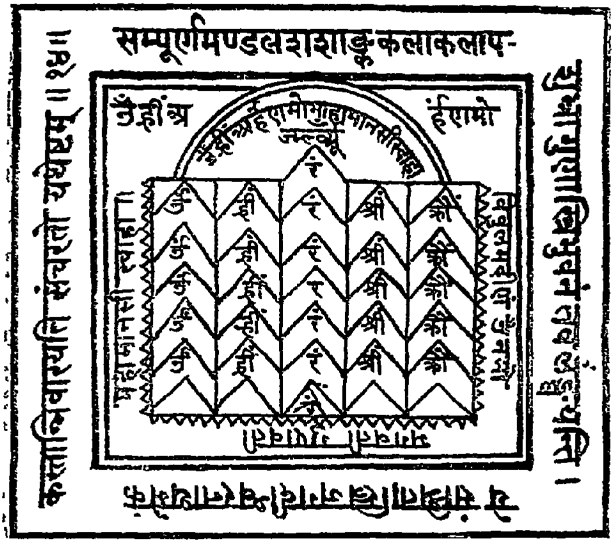

१४ ऋद्धिं—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विपुल मदीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती महा मानसी स्वाहा

विधि—यन्त्र पास में रखने और ७ कंकरी लेकर प्रत्येक को २१ बार मन्त्र कर चारों ओर फेंकने से व्याधि शत्रु आदिका भय मिट जाता है लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है वायु रोग नष्ट होता है ।

चित्रं किमत्र यदिते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किंमन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ।१५।

देवांगना हर सकीं मनको न तेरे, आश्चर्य नाथ, इसमें कुछ भी नहीं है ।
कल्पांतके पवनसे उड़ते पहाड़ पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या ॥१५॥

भावार्थ—हे भगवान ! देवांगनाओं के द्वारा यदि आपका चित्त किंचित भी चंचल नहीं हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि कम्पित किये हैं पर्वत जिसने ऐसे प्रलयकालके पवनसे क्या सुमेरू पर्वत का शिखर हिल सकता है ? कभी नहीं !

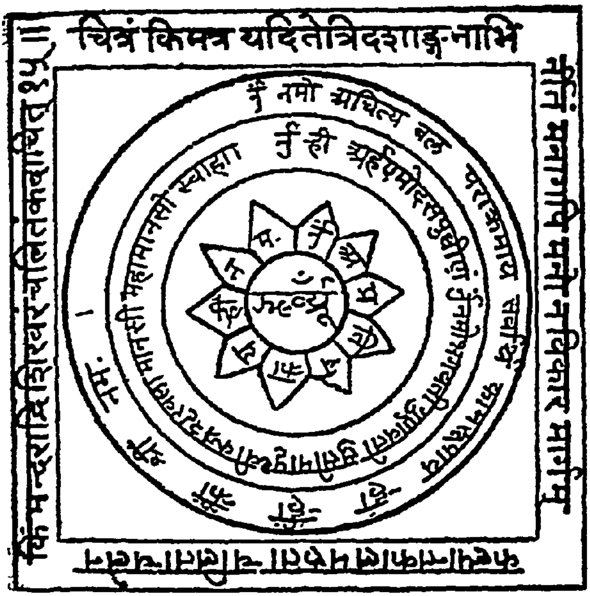

१५ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दशपुव्वीण।

मंत्र—ॐ णमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्र शृंखला मनसी महा मानसी स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और मन्त्र द्वारा २१ बार तेल मन्त्र कर मुखपर लगाने से राज दरबार में बोलबाला रहै, सौभाग्य बढ़ै और लक्ष्मीकी प्राप्ति होवै। चौदह दिन तक प्रतिदिन लाल माला द्वारा १००० जाप करना, दशांग धूप देना और एक भुक्ति करना चाहिये।

महारानी कल्यानीकी कथा।

केतपुर नगर के राजा की स्त्रीका नाम कल्याणी था, वह बड़ी धर्मात्मा और सच्चरित्र रानी थी जिन पूजा और भक्तामर पाठ उसका नित्य कार्य था।

चौपाई—एक दिवस यह कारन भयौ। राजा वन क्रीड़ा कौं गयौ॥
किलोल कामिनी गोली भखी। भक्ष अभक्ष कछू नांहं लखी॥१॥
खातहिं काम व्यापियौ ताहि। सकल विचार विसरिगौ वाहि॥
सांझ भई आयो घर मांहि। काम अंध सूझै कछु न'हिं॥२॥

जोग अजोग चित्त नहिं धरी। चम्पा बांदी सों रति करी॥
रानी देखि कही मन माहिं। यह कुलीनके लक्षण नाहिं॥३॥

राजा की ऐसी ओछी वृत्ति देख महारानी कल्याणी बड़ी ही चिन्तामें पड़ गयी थीं, संसार और विषय भोग उन्हें विरस भासने लगे थे।

चौपाई—इतनेमें कामातुर राय। लाग्यो रानी लेन बुलाय॥
काम केलि क्रीड़ाके हेतु। फिर रानी तब उत्तर देत॥१॥
राजा कीजे कोटि उपाय। मैं क्रीड़ा करवे की नाय॥
तुम्हरी क्रिया देखिके डरौं। मैं अब तुम्हरौ संग न करौं॥२॥
राजा—तब फिर राजा कही विचार। क्यों नहिं आवत हो वरनार॥
आज कहा रिस उपजी तोय। क्यों नहिं अंग लगावत मोय॥
रानी—हम सों कीड़ा नहिं कह चली। तुमहि जोग है चम्पा भली॥
धर्म क्रिया करि हीन जो होय। तासौं संगति करौं न कोय॥

केतकपुर नरेशके चित्तमें विवेककी मात्रा थोड़ी तो थी ही, आपने कुपित होकर सिपाहियों को आज्ञा दे दी कि रानी कल्यानी को विकट बनके कुए में ढकेल आओ, तब सिपाहियों ने वैसा ही किया। उस पवित्र चरित्रा कल्याणी बाईने श्री भक्तामरजी के १४ और १५ वें युगल काव्यकी आराधना की जिसके प्रसादसे जंभा देवी प्रगट हुई।

सोरठा—सुमरत जंभा आय, सिंहासन रचि हेमको।
रानीकौं बैठाय, आपुन कीन्हीं आरती॥१॥

जब राजाको खबर लगी तब वे वहां दौड़े गये और कहने लगे—

चौपाई—मैं मरनेकौं डारौ याह। को मारै प्रभु राखै ताह ॥
देवी—एरे दुष्ट क्रिया करि हीन। अति मति मंद बुद्धि करि छीन ॥
तेरे नहीं विवेक विचार। डारी निज तिय कूप मंझार ॥
यह सुमरत है मंत्र महंत। जाके वशमें देव अनन्त ॥
संजम शील धरैं गुन भरी। गुन मंगल की वेली खरी ॥
राजा—तव राजा लाग्यौ पछतान। मोकों माता भयो न ज्ञान ॥
वहुत वात कहिये कहं तोहि। अव तू मातु क्षमाकर मोहि ॥

निदान राजाने अपना दुश्चरित्र छोड़ दिया और श्रावकके व्रत अंगीकार किये जंभा देवी स्वर्ग लोकको चली गई और महारानीने अर्जिकाके व्रत लिये और आयुके अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्गको सिधारी।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥

बत्ती नहीं, नहि धुआँ नहि तैलपूर, भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है।
सारे त्रिलोक विच है करता उजेला, उत्कृष्ट दीपक विभो, द्युतिकारि तू है ॥१६॥

भावार्थ—हे नाथ! आप त्रैलोकको प्रकाशित करनेवाले अद्वितीय और विचित्र दीपक हो जिसको न बत्ती चाहना पड़ती है न तेल, परन्तु बड़े बड़े पर्वतोंको हिलाने वाली हवाके झोकोंसे भी नहीं बुझ सकता।

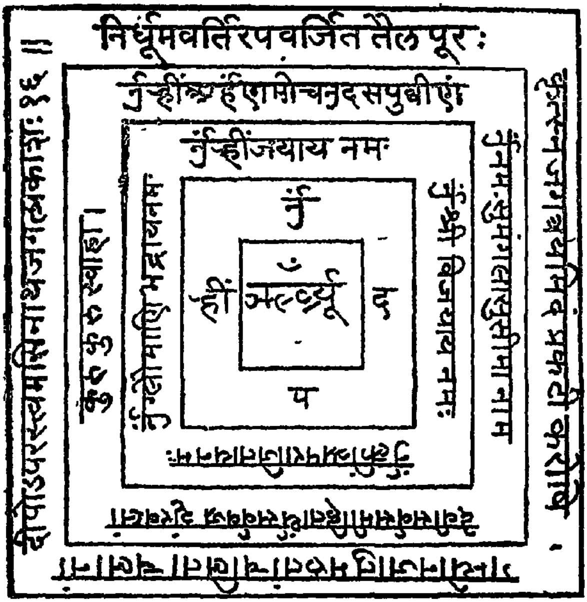

१६ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो चवदश पुव्वीणं।

मंत्र—ओं णमो मंगला सुसीमा नाम देवी सर्व समीहितार्थ वज्र शृंखलां कुरु कुरु स्वाहा!

विधि—यंत्र पास रखने और १०८ बार मन्त्र जपकर राज दरबार में जानेसे प्रतिपक्षीकी हार होती है। शत्रुका भय नहीं रहता। ९ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप हरे रंगकी माला द्वारा जपना और धूप कुन्दरू की देना चाहिये।

क्षेमंकर कुमार की कथा

मंडपपुर नगर में राजा महीचन्द्र राज्य करते थे उनकी सोम वदनी भार्या का नाम सोमश्री था। उभय दम्पत्ति के दाम्पत्य प्रेमसे उनके मित्रा बाई नामकी एक कन्या हुई थी।

जब वह ७ बरस की हुई तब श्रीमती नाम की अर्जिकाके पास लौकिक और धार्मिक शिक्षा आरम्भ करा दी थी। उस विनयवती कन्या ने उस सच्चरित्र गुरानी के पास अनेक प्रतिज्ञाओं के सिवाय यह भी आखड़ो ली थी कि रत्नमई जिन प्रतिमा के दर्शन किये बिना अन्न जल ग्रहण न करूंगी।

जब उनकी मनोहरी कन्या १६ वर्ष की हो गई तब एक दिन रानी सोमश्री ने अपने स्वामी से मौका पाकर कहा----

चौपाई—पुत्री भई व्याहके जोग । याको कीजे शुभ संजोग ॥

तब राजा महीचन्द्र ने पुरोहित को बुला कर कहा कि बाई के लिये सुन्दर घर बर की खोज करो । पुरोहित जहां तहां विचरता कुन्दपुरमें पहुंचा वहां सेठ क्षेमपाल के यहां क्षेमंकर नाम का पुत्र था ।

चौ०—विद्या विषै सकल परवीन । रूप कला मनमथ वश कीन ॥
बुद्धि विवेक कला विज्ञान । सकल गुननकरि परमनिधान ॥
राज द्वार महिमा तसु घनी । पण्डित लोग गिने शिरोमनी ॥
पंचन मध्य सभा सिंगार । मंत्र जंत्र साधैं शुभसार ॥२॥
भक्तामर में अति लव लीन । पठन पठावन में तल्लीन ॥
विद्या ज्ञान प्रकाशन शूर । परमारथ पथ करुणा पूर ॥३॥

अधिक लिखने से क्या सर्व गुण सम्पन्न चिरंजीव क्षेमंकर के साथ मित्रा बाईकी सगाई करके पुरोहितजी घर को लौट गये । दोनों ओर से विवाह की तैयारियां होने लग गई और सेठ क्षेमपाल बड़े ठाठसे सज-धजकर बरात ले गये ।

दोहा---व्याह भयो अति प्रीतिसों, कीन्हीं बिदा बरात ।
गये गेह अपने सबै, आनन्द उर न समात ॥

चौ०—घर भीतर जब दुलहिन जाय, ना जल पिये अन्न नहिं खाय ।
लागे करन सकल उपचार, यह कुछ दोष देव अनुराग ॥
सासू—जौन भांति भोजन तुम करो, सो विधि सकल हमें उच्चरो ।

बहू—पार्श्वनाथ के दर्शन करों, तब मैं अन्न पान आदरों।
सासू—यामें बहू कहै तू कहा, प्रतिमा है घर भीतर महा।
उठकर मुख धोवहु तुम बाल, दर्शन जाय करौ ततकाल॥
बहू—रतन बिम्ब मैं देखों जबै, भोजन पान आचरौं तबै।
कुटु०—सब परिवार मनावे ताह, रतन बिम्ब कहुं देखे नाह।
इह हठ छांड़ि बहू तुम देउ, जाय देवालय दरशन लेउ।
बहू—हाथ जोड़ि व्रत लियो महन्त, सीख दई गुरु देव सिद्धान्त।
क्यों न प्रान अबहु कढ़ि जाय, तौहू व्रत छोड़न की नाहिं॥
क्षेमंकर—इतने में क्षेमंकर आय, तिन लीनों जोगासन जाय।
निर्धूमवर्ति काव्य मुख पढ़ौ, अतिशय तेज अखंडित बढ़ौ॥१॥
सगरी रैन बीत जब गई, चतुरभुजी तब प्रगटत भई।
चार भुजा सोहे तसु अंग, महा जोति फैली सरवंग॥२॥
देवी—क्यों आराधी मोकों बाल, कारण होय कहो तत्काल।
इच्छा होय सो पूरन करों, मनमें तनिक न संशय धरो॥३॥
क्षेमं—पार्श्वनाथ प्रतिमा मणि मई, ताकी नारि प्रतिज्ञा लई।
जब देखे ऐसो जिन राज, तब वह ग्रहण करै जल नाज॥

पश्चात् वह देवी रत्नद्वीप को गई और वहां से रत्नबिम्ब लेकर आई, सबने विनय पूर्वक मन्दिरजी में पधराये बाई ने भक्तिपूर्वक जिन-दर्शन करके भोजन पान किया, देवी निज स्थानको चली गई और विद्वान सेठ क्षेमंकर अपनी पत्नी समेत सुख से रहने लगे।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टी करोषि सहसा युगपज्जगन्ति।

नाम्भोधरोदरनिरुद्ध महाप्रभावः
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके ।

तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु, पाते प्रकाश तुझसे जग एक साथ ।
तेरा प्रभाव रुकता नहि बादलों से, तू सूर्यसे अधिक है महिमानिधान ॥ १७॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र ! आप ऐसे विलक्षण सूर्य हैं जो न तो कभी अस्त होता है, न राहुसे ग्रसा जाता है, न बादलोंसे आच्छादित होता है और एक क्षणमें समस्त संसारको प्रकाशित करता है ।

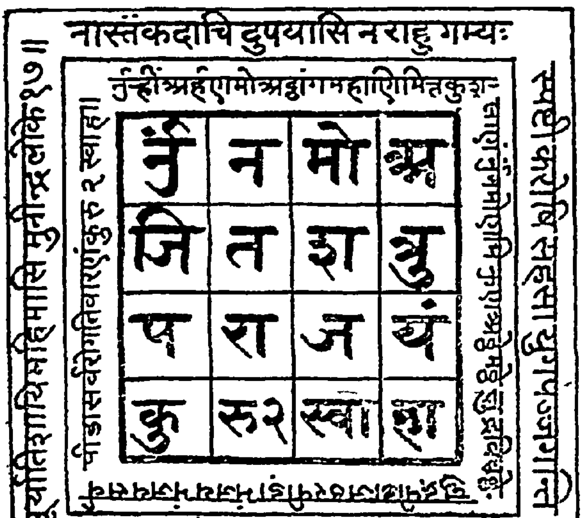

१७—ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांग महा निमित्त कुशलाण ।

मन्त्र—ओं णमो णमि ऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्र विघट्ठे क्षुद्र पीडा जठर पीडा भंजय भजय सर्व पीडा सर्व रोग निवारण कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—यन्त्र पास रखने और अछूना पानी मन्त्र द्वारा २१ बार मन्त्रित कर पिलाने से पेटकी असाध्य पीड़ा तथा वायु शूल गोला आदि सभी रोग मिटते हैं । ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप सफेद माला द्वारा जपना और धूप चन्दन की देना चाहिये ।

बाई कल्याणश्री की कथा

कुमकुम देश में चक्रेशपुर नामका नगर था वहां के राजा नरसिंह और रानी रतनावती के एक पुत्र हुआ उसका नाम रतनशेखर रखा।

चौ०—षोड़श बरस भयौ जब बाल, काम कला उपजी तिहिंकाल।
जित तिति निकसि तमासैं जाय, परतिय निरखि रहै जु लुभाय।
रसिक कथा नित सुनै सुभाय, तिय शृंगार महा सुख पाय।
वह सुशील यह कामी अंग, भयो केर बदरी× को संग।

जब चक्रेशपुर नरेशको पुत्र की काम जागृति प्रतीत होने लगी तब उन्होंने रतनशेखर का विवाह कल्याणश्री नामकी राजकन्याके साथ कर दिया। वह कन्या महाशीलवान मानों धर्मकी अवतार ही थी, परन्तु रतनशेखर महा दुराचारी और नीच वृत्ति का था।

रतनशेखर की ऐसी कुटिल परिणति देखकर एक दिन कल्याणश्री ने कहा---

चौ०—सुनौ कन्त इक मेरी बात, जासों सुजस होय विख्यात।
धर्महीन नर मूरख जोय, पर तियसों रति मानै सोय॥
धर्मनीत जाको न सुहाय, अन्तकाल मर दुरगति जाय।
ज्ञानवंत! इतनी अब करो, शील अणुव्रत निहचें धरो।

रतनशेखर—   अडिल्ल छन्द

राज सम्पदा रिद्धि, सुभाग न पाइये।
कीजे सुख संसार, न ताहि गमाइये॥

× बेर।

ध्यान व्रतादिक नेम, वृथा क्यों कीजिये ।
मेरे घर बहु सुक्ख, नारि सुन लीजिये ॥१॥

दोनोंका बहुत कुछ उत्तर प्रत्युत्तर हुआ । अन्तमें रतनशेखर ने यही कहा कि मैं अपने गुरुजी से पूछूंगा और जैसा वे कहेंगे वैसा ही श्रद्धान करूंगा। वह अपने गुरु एक जोगी के पास गया और बड़े विनय से पूछने लगा कि महाराज ! क्या जैन-धर्ममें भी कुछ सचाई है ।

जोगी—वे वादी मिथ्याती आय, नंग देव पूजत हैं जाय ।
बिद्या धरम न जाने कोय, वेद बात मानत नहिं लोय ॥

इतना कहके उसने अपने हाथमें की मुद्रिका निकाल कर सामने फेंक दी और कहा मेरा चमत्कार देखो अचेतन को चलाये देता हूँ उसने थोड़ा सा मन्त्र पढ़के फूंक दिया कि मुद्रिका चलने लगी । भोले भाले रतनशेखर को जोगी की इस लीला पर बड़ी श्रद्धा हो गई वह कल्याणश्री के पास आया और जैन-धर्म की निन्दा करता हुआ कहने लगा कि जैन-धर्ममें मंत्र जन्त्र कुछ भी नहीं है ।

चौ०—जिन शासनमें मन्त्र जो होय । मोकों प्रगट दिखावहु सोय ॥
तब तिन काव्य मन्त्र आदरो । रिद्धि सिद्धि गरभित गुण भरो ॥
'नास्तं कदाचित' सुमरो जबै । गन्धारी सो पहुंची तबै ॥
देवी—बोलो क्यों सुमरी तुम बाल । कारज कहो करों ततकाल ॥
कल्याणश्री—
मैं माता तुम सुमरी एम । कौतक एक दिखाओ जेम ॥
जैन धर्म की महिमा हाय । मिथ्यामत मानै नहिं काय ॥१॥

तब उस गन्धारी देवीने एक सुवर्णमई नगर रच दिया जिसमें बड़े बड़े विशाल जिन-मन्दिर और रत्नमई जिनविम्ब बन गये। उस नगर को बापो, कूप, तालाब, बगीचा आदि सब प्रकार से अनुपम कर दिया जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये और मिथ्यामती लोगों की अकल ठिकाने आ गई वे जैनधर्म को धन्य धन्य कहने लगे। उस योगी वा रतनशेखर और अन्य अन्य स्त्री पुरुषों तथा चक्रेशपुर नरेशको जैन धर्म अंगीकार कराके गन्धारी देवी निज स्थान को चली गई।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्तिं
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ॥१८॥

मोहान्धकार हरता रहता उगा ही; जाता न राहु-मुखमें, न छुपे घनों से।
अच्छे प्रकाशित करे जगको सुहावे; अत्यन्त कांतिधर नाथ, मुखेंदु तेरा ॥१८॥

भावार्थ—हे भगवान्! आपका मुख कमल ऐसे विलक्षण चन्द्रमा की शोभाको प्राप्त है। जो सदैव स्वयम् प्रकाशित रहता वा जगतको प्रकाशित करता है और मोह अन्धकारको दूर करता है। उसे न राहु ग्रसता है और न वह मेघोंसे ढंक सकता है।

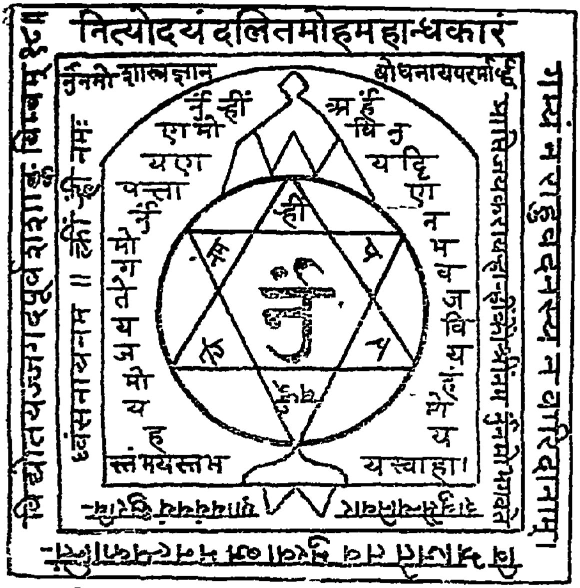

१८ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो विउ-यणयड्ढिपताण ।

मन्त्र—ओं नमो-भगवते जयां विजय-मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा ।

विधि—यंत्र पास रखने और—१०८ बार मन्त्र जपने से शत्रु अथवा शत्रुकी सेना का स्तम्भन होता है । ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे जपना, धूप दशांगी देना और एकबार भोजन करना चाहिये ।

भद्रकुमार की कथा

जिस समय की यह कथा है- उस समय कुलिंग देशमें बरवर-नगर-था-वहां राजा चन्द्रकीर्ति रहते-थे-जब उनके मन्त्री सुमतिचन्द्र का स्वर्गवास-हो-गया था तब—राजाने उनके पुत्र भद्रकुमार को बुलाया औ कहा कि तुम अपने स्वर्गीय पिताकी पदवी अंगीकार करो ।

भद्रकुमार निरा निरक्षर था, लिखना पढ़ना तक भी वह नहीं जानता था बेचारा बड़ा ही लज्जित हुआ और राजा को अपना अभागा दोष कह सुनाया कि मेरे मन्त्री पदसे मेरी ही नहीं आपकी भी जगतमें हंसी होगी ।

राजा— दोहा।

बालक तुमने क्यों नहीं, विद्या पढ़ी सुभाय।
तात तिहारो दक्ष अति, तुम मूरख दुखदाय ॥

भद्रकुमार— दोहा।

या जगमें बहुते रतन, पग पग पै रसकूप।
भाग्य बिना नहिं पाइये, निहचैं जानो भूप ॥

राजा— सोरठा।

जामें विद्या नाहिं ताको जनम अकार्थ है।
यह समझो मनमाहिं, नीके ही प्रिय भद्र तुम ॥

भद्रकुमार अत्यन्त लज्जित होकर दरबारसे तो चला आया, परन्तु उसके चित्तमें विद्याधन कमाने की गहरी चिन्ता हो गई। वह एक दिन बनवासी सकल संजमी मुनि महाराज के पास गया और विनयपूर्वक अपने चित्तका क्लेश कह सुनाया।

मुनि— चौपाई।

मिथ्या धरम छांड़ तुम देव। मन वांछा पूरन कर लेव।
जो तुम जैन धरम आचरौ। विद्या धन गुनसुख आदरो ॥१॥

जब गुणग्राही भद्रकुमार ने मुनि महाराजके उपदेश से जैन-धर्म और श्रावकके व्रत अंगीकार कर लिये तब उन कृपालु मुनीश्वरने श्रीभक्तामरजी का १८ वां काव्य विधि समेत सिखा दिया। भद्रकुमारने अन्न, जल छोड़कर तीन दिवस तक बड़ी तपस्या की और मन्त्र सिद्ध किया। परिणाम यह हुआ कि वज्रा देवी प्रकट हुई, और कहने लगी—

देवी— चौपाई।

क्यों बालक आकर्षी मोय। मांग मांग जो इच्छा होय॥
बालक—बार बार मैं वन्दों पाय। विद्या वर दीजे मो माय॥

विद्या वर देकर देवी निज स्थानको चली गई और मंत्री पुत्र भद्रकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर घरको चले आये।

चौ०—सुखसों आन मिलो परिवार। लायो विद्या अपरम्पार॥
पुनि वह गयो राज दरबार। जाय राजसों करी जुहार॥१॥
देखत राजा हर्षित भयो। सकल सभा मनमोहित भयो॥
आदर दे पूछें महाराय। तुम विद्या कह पाई भाय॥२॥
तब प्रिय भद्र कही समझाय। पूरब कथा कही सुखदाय॥
तब राजा ने ऐसो कियो। फेर मन्त्रि पद इनको दियो॥३॥
सकल सभामें भयो प्रधान। राजा बहु विधि राखो मान॥
पुनि राजा श्रावक व्रत लियो। अपनो गुरु करके थापियो॥४॥

पाठक, जैनधर्म के प्रसाद से केवलज्ञानरूपी महाविद्या सिद्ध होती है तब यह शास्त्रीय विद्या मिल जाना एक मामूली सी बात है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥

क्या भानुसे दिवसमें, निशिमें शशीसे, तेरे प्रभो, सुमुखसे तम नाश होते।
अच्छी तरह पक गया जग-बीच धान, है काम क्या जल भरे इन बादलों से ।१९।

भावार्थ— हे नाथ ! जिस प्रकार पके हुए धान्य वाले देशमें पानी के बोझसे झुके हुए बादल व्यर्थ हैं, उसी प्रकार जहां आपके मुखचंद्रसे अज्ञान अन्धकार नाश हो चुका है, वहाँ रात्रिको चन्द्रमासे और दिन को सूर्यसे क्या प्रयोजन है ? व्यर्थ ही शीत और आताप करते हैं।

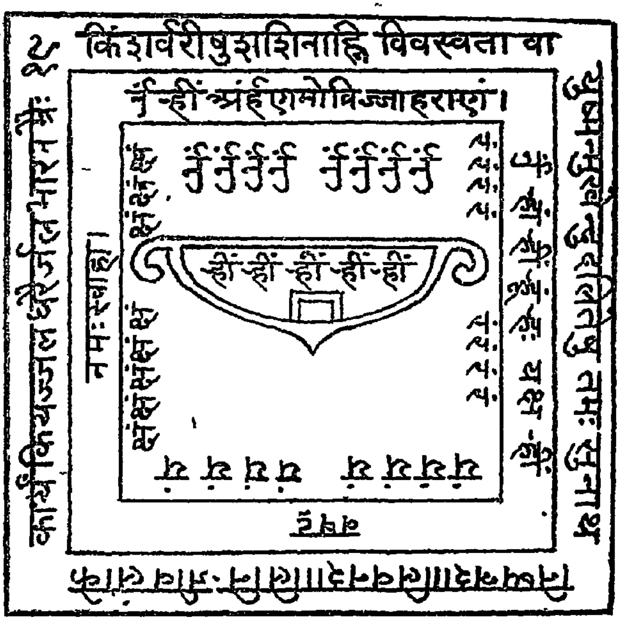

१९ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं।

मंत्र ..ओं ह्रां ह्रीं ह्रू ह्रः यक्ष ह्रीं वषट् नमः स्वाहा।

विधि पास में यंत्र रखनेसे और मंत्रको १०८ बार जपने से अपने पर प्रयोग किये हुए दूसरे के मंत्र, विद्या, टोटका जादू मूठ आदिका असर नहीं होता। उच्चाटनका भय नहीं रहता।

सेठ सुखानन्द कुमार की कथा

कुरुजांगल देशमें हस्तनागपुर* प्रसिद्ध है वहाँ किसी समय राजा सूरपाल थे उसी नगर में उन दिनों देवल नामके एक

---

* देहली होकर मेरठको गाड़ी जाती है, वहांसे मोहाना होकर हस्तनापुर जाना पड़ता है। दिल्ली को ही हस्तिनागपुर न समझना चाहिये।

सेठ रहते थे उनके यहाँ हीरा, जवाहिरात का व्यापार होता था, सेठजी के एक सुखानन्द नाम का बालक था। उनको सेठजी ने अन्य अन्य धर्म शास्त्रों के सिवाय सकल कलुपविध्वंशक श्रीभक्तामर काव्य का भी अध्ययन कराया था।

राजा सूरपाल को एक दिन बहुत से गहने बनवाने की आवश्यकता पड़ी सो उन्होंने प्रिय सुखानन्द कुमार को बुलाया सोना, चाँदी और बहुत से हीरा माणिक सब अच्छा सच्चा माल उन्हें सम्हला दिया। सुखानन्दकुमार ने वह सब माल सुनार को राजा के ही सामने सौंप दिया।

दोहा—कनक रतन मुकता घने, दिये सुनार बुलाय।
रानी जोग सुहावने, भूपण देहु बनाय ॥ १ ॥
तस्कर सोनी किह कियो, रतन बदल सब लीन।
खरे आप घरमें धरे, खोटे सब गढ़ दीन ॥ २ ॥

अडिल्ल—आभूपण गढ़ लाय, राय के कर दिये।
राजा देखत दृष्टि, महा कोपित हिये ॥
क्यों रे दुष्ट सुनार, कहा तू ने करी।
हमहूं से न डरात, कहा मनमें धरी ॥ १ ॥

सुनार— सोरठा।

बोल्यो दुष्ट सुनार, राय [illegible] कहा।
जो मुहि दीनों आय, सो हम दियो गढ़ायके ॥ १ ॥
सेठ बाल बुलवाय, [illegible]राज सब पूछिये।
जो मैं बदलौं [illegible], तो जानो सो कीजिये ॥ २ ॥

राजा ने तुरन्त ही सुखानन्द कुमारको बुलवाया और खूब डांट फटकार लगाई।

राजा—साँचे मणि तुम धरे दुकाय। खोटे हमें दये लगवाय॥
तुम हमको नहिं संके रंच। राजन के न चलें प्रपंच॥ १॥

सुखानन्द—सेठ नन्द बोलो कर जोर। राजा हमें न लाओ खोर॥
हम जो रतन बदल यदि लेय। तुमको ज्वाब कौन बिधि देय॥२॥

उस विवेकहीन राजाने सुनारको तो बिदाकर दिया और सेठ सुखानन्द को जेलखाने में कैद कर देनेका हुक्म देकर कहा—

रतन हमारे देहि मंगाय। तब मैं याकों देहुं छुड़ाय॥

जब जेलखाने में सुखानन्द सेठ को तीन दिन बिना अन्न जल के बीत गये तब उन्होंने श्रीभक्तामर के १९ वां काव्यका स्मरण किया जिससे जम्बू देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी—कहो वच्छ जो इच्छा होय। ततछन काज करों मैं सोय॥
सुखानन्द—रतन बदल औरहु ने लये। हमकों नृप योंही दुख दये॥

तब तो देवी, सुखानन्द के सम्पूर्ण बंधन तोड़ कर उन्हें उनके घर पर छोड़कर अपने स्थान को चली गई। कुछ दिनों के बाद जब सुनारने सुखानन्द कुमार को घरपर बैठे देखा तब [illegible]ने राजासे कहा कि हे महाराज! क्या आपके सच्चे रत्न मिल [illegible] सुखानन्द को छोड़ दिया है राजाने विस्मित होकर अपने मंत्रीको [illegible]नन्द के घर भेजा और उन्हें पुनः पकड़ बुलाया तब देवीने पुनः प्रगट होकर सब सच्चा हाल कह सुनाया। जिससे राजा को बड़ा संतोष हुआ। सुनारको बहुत कड़ा दण्ड दिया। ठीक है देवता भी धर्मात्माओंके दास बनकर रहते हैं।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

जो ज्ञान निर्मल विभो! तुझमें सुहाता, भाता नहीं वह कभी परदेवतामें।
होती मनोहर छटा मणिमध्य जो है, सो काँचमें नहि पड़े रवि-बिम्बके भी ॥२०॥

भावार्थ…हे भगवान! अनन्त पदार्थोंको जानने वाला केवलज्ञान जैसा आपको प्राप्त है वैसा हरिहर ब्रह्मा आदि देवताओं को नहीं है। क्यों कि जैसा प्रकाश रत्नमणि में स्फुरायमान होता है वैसा चमकते हुए भी कांचके टुकड़ोंमें नहीं होता।

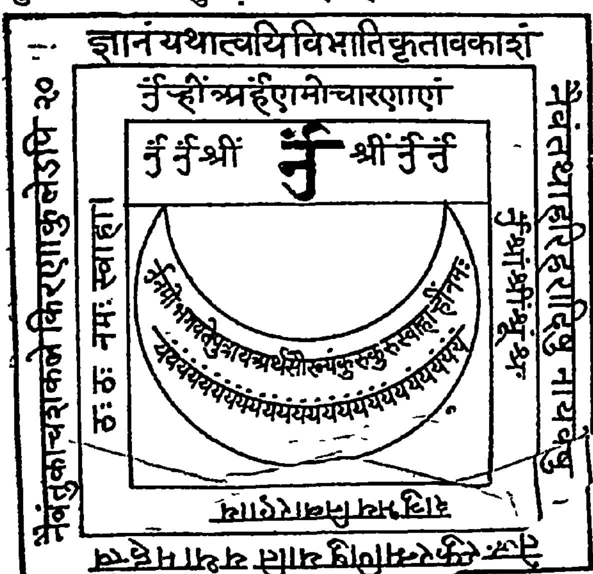

२० ऋद्धि--ओं ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं

मन्त्र-ओं श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रु-भय निवारणाय ठः ठः स्वाहा।

विधि—पास में यन्त्र रखने १०८ बार जपने से सन्तान की प्राप्ति होती है, लक्ष्मी मिलती है, सौभाग्य बढ़ता है, विजय लाभ होता है और बुद्धि बढ़ती है।

सेठ विष्णुदास की कथा

दक्षिण देश में रतनावती नगरी प्रसिद्ध है। वहां अडोल नाम के एक सेठ रहते थे जैन-धर्म पर उनका दृढ़ विश्वास था उनके एक पुत्र था, यद्यपि वह स्वरूपवान और शरीर से सुदृढ़ था, परन्तु जैन-धर्म में उसकी किंचित भी श्रद्धा नहीं थी—'लोल हुए तो क्या हुआ बिना बासका फूल" विष्णु-धर्म में उसकी गहरी रुचि होने से पिता ने उसका नाम विष्णुदास रख छोड़ा था।

चौपाई—पूजा विष्णु तनी मन धरै। विष्णु विष्णु मुखतें उच्चरै।
मिथ्यातम छाये दृग दोय। देव अदेव न जानत कोय ॥ १ ॥
जीवतत्व जाने नहिं गूढ़। बिन गुरु ज्ञान लखै क्यों मूढ़ ॥
बिन गुरु पंथ बतावे कौन। बिन गुरु नर सूकर*समतौन ॥२॥

दोहा---गुरु माता गुरु ही पिता, गुरु बाँधव संसार।
सुरग मोक्ष दोऊ तनौं, पंथ दिखावन हार ॥१॥

एक दिन ईर्यापथ×शोधते हुए सकल संयमी मुनि महाराज रतनावती नगरी में विहार करते हुए निकले उन्हें सेठ अडोल-जी ने विनय पूर्वक पड़गाहा और सेठानी सहित दोनों ने नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया।

दोहा---कर पग मींड़ साधुके, विनती करी बनाय।
अखै दान मुनिवर दियो, लीन्हों सीस चढ़ाय ॥

* सुअर। × साढ़े तीन हाथ भूमि आगे को निर्जीव देख लेना पीछे पैर धरना।

सेठ— सोरठा

सुनो महामुनि साध, पुत्र एक मेरे घरे।
करै कुदेव अराध, मेरो बरजो ना रहे ॥ १ ॥
मिथ्या तम संसर्ग, विष्णुदास करुणा तजी।
छोड़ो अपनो वर्ग, नाथ ताहि संबोधिये ॥२॥

मुनि (बालकसे)— चौपाई।

क्यों तुम कहा पढ़े हो वच्छ। हम आगे कीजे परतच्छ ॥

विष्णुदास—

मैं तो सुगुरू पढ़ो कछ नाहिं। विष्णु भगति मेरे मनमांहि ॥

मुनि—पंच मिथ्यात मूलतें तजो। तब तुम एक विष्णुको भजो ॥
जबलों नहिं नाशें ये पंच। तबलों विष्णु न जाने रंच ॥

विष्णुदास—

स्वामी अब मैं भयो उदास। जिनमत को अति करों प्रकाश ॥
देव शास्त्र गुरु साखी भरों। मैं मिथ्यात्व भूल नहिं करों ॥ १ ॥
जीव दया पालों ठहराय। हिंसा छोड़ी मन वच काय ॥
जिनवर धर्म मर्म समझाय। जिन दीक्षा दीजे गुरु राय ॥ २ ॥

मुनि—

दोष अठारह ते निरमुक्त। सोही देव निरंजन युक्त ॥
दरशन बिन उपजे नहिं ज्ञान। ज्ञान बिना नहिं चारितजान ॥१॥
चारित बिना ध्यान नहिं होय। ध्यान बिना नहिं शिवपद कोय ॥
दरशन ज्ञान चरन चितलाय। गहौ महा समकित दृढ़ पाय ॥२॥

विष्णुदास—

अब गुरु तुम इतनों जस लेय। एक ज्ञान हमको तुम देव ॥
जातें अद्भुत कौतुक होय। जैन धरम जाने सब कोय ॥ १ ॥

मुनि—अहो वच्छ तुम नीकी कही। लेहु मन्त्र तुम साधो सही ॥
जो वाको निहचें आदरो। ताको मन वांछित फल वरो ॥१॥

मुनि महाराज, भक्तामरजी का २० वां काव्य उसे विधि-पूर्वक सिखाकर विहार कर गये। एक दिन राजा सिंहसेन ने विष्णुदास को बुलाकर कहा कि आपको मन्त्र विद्या में प्रवीण सुना है कोई चमत्कार दिखाइये। भृगुकच्छ नरेश के यहां अष्ट सिद्धियाँ हैं उन्हें विद्याबल से बुलवाइये। विष्णुदास ने घर पर जाके मन्त्र की आराधना शुरू कर दी तो आधी रात्रिको भृकुटी देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी—मांग मांग जो इच्छा तोह।
विष्णु—अष्ट सिद्धियां लाओ मोह ॥

तब देवी चौल देशको गई और आठों सिद्धियां* लाकर राजा के सिरहाने रख दी, लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। राजा ने विष्णुदास पर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की उन्हें अपना आधा राज्य दे दिया अपनी प्यारी कन्या उन्हें ब्याह दी।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥

---

* ये सिद्धियां धन, धान्य, रत्नहार हेमपात्र, आदि अटूट सामग्री देती हैं विषनाश करनी मन्द सुगंध पवन चलाने वाली होती हैं।

देखे भले, अयि विभो ! परदेवता ही, देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये ।
तेरे विलोकन किये फल क्या प्रभो, जो कोई रमे न मनमें परजन्ममें भी ॥२१॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं हरिहर आदि देवताओं को देखना ही अच्छा मानता हूं क्योंकि उनके देखनेसे मन आपमें सन्तोष पाता है। परन्तु आपके देखने से क्या ? जिससे कि कोई अन्य देवता जन्मान्तरमें भी मनको हरण नहीं कर सकता। सारांश—आपके देखनेसे दूसरोंमें चित्त नहीं जाता, यह हानि है और दूसरों के देखने से आपसमें संतोष होता है, यह लाभ है। यह व्याज निन्दा, व्याज स्तुति अलंकार है।

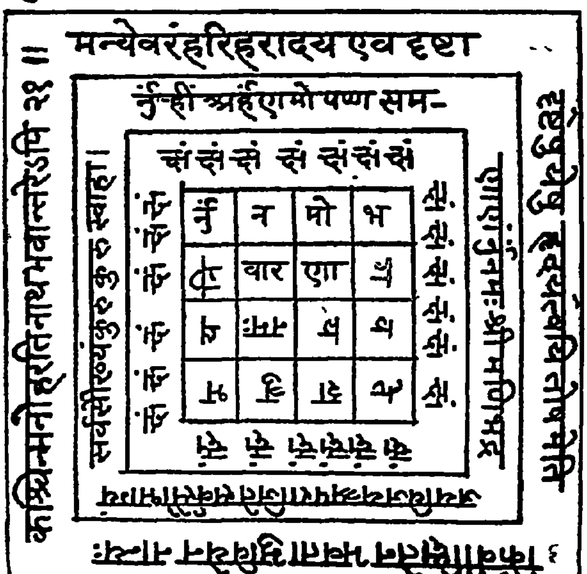

२१ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं।

मंत्र—ओं नमः श्री मणिभद्र जय विजय अपराजित सर्व-सौभाग्य सर्व सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—मन्त्र को ४२ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने और पास में यंत्र रखने से सब अपने आधीन होते हैं।

सेठ श्रीधर और रूपश्री की कथा

मालवा देश में विशाला नाम की एक नगरी थी वहां नामचन्द्रजी नाम के एक सेठ रहते थे पुण्योदय से उन्हें एक

पुत्र हुआ था जिसका नाम श्रीधर था, जब वह विद्याध्ययन के योग्य हुआ तब उसने गणित, साहित्य, छन्द, व्याकरण आदि विद्याओं के सिवाय मनवांछित फलदायक श्रीभक्तामरजी का भी अभ्यास किया था। सेठ नामचन्द्र ने प्रिय श्रीधर कुमारका विवाह रूपश्री नाम की एक कन्या के साथ कर दिया था, वह कन्या नाम के सिवाय रूप की रूपश्री थी वैसे ही जैन-धर्म और सदाचार से भी सम्पन्न थी।

चौ०—एक दिवस बरसा अति घोर। मूसलधार गिरै जल जोर॥
अंधकार व्याकुल सब भयो। दिनकर क्रांत सूर्य छिप गयो॥१॥
पृथ्वी सकल जलामय भई। तर्जित तर्जि भयानक ठई॥
दामिन दमके अति भयभीत। बाढ़ बहै भारी विपरीत॥२॥

दोहा—श्रीधर सों कह रूपश्री, चलो देवालय जाय।
आठों द्रव्य संजोयकें, पूजें श्रीजिन राय॥१॥
श्रीधरने उत्तर दियो, देखतके कछु नांय।
कछु दृगन सूझत नहीं, किमि जिन बंदन जांय॥२॥

रूपश्री— अडिल्ल।
जो लौं श्रीजिनवरकी, बसु विधि पूजा ना करौं।
तो लौं मैं जल अन्न, नेकु ना आदरौं॥
श्रीधर—जल सौं कहा बसाय, रि मूरख बावरी।
छोड़ौ हठ वर नारि, कुमति क्यों आदरी॥१॥

रूपश्री— सोरठा।
प्रान जाय तो जाय, लई प्रतिज्ञा न टरे।
सुनो कंत चितलाय, इस तनकी आशा कहा॥१॥

तब श्रीधर ने शरीर शुद्ध करके पद्मासन बैठकर मंत्र आराधना शुरू कर दी तो मीरा देवीने प्रगट होकर कहा----

देवी— चौपाई।

कह कह रे श्रीधर मुखवात। कारण कौन कियो अवदात ॥
इच्छा हो सो पूरन करौं। तेरे मनको संशय हरौं ॥१॥

श्रीधर श्रीजिन पूजा की विधि नांय। कैसे के जलपान करांय ॥
यामें विलम न कीजे माय। श्री जिन दरशन वेग कराय ॥१॥

तब देवीने बहुत ही सुन्दर मायामई रतनरचित विमान सजाकर दोनोंको बैठाया और पवनगामी गतिसे शीघ्र ही जिन चैत्यालय को ले गई। दोनों नर-नारी ने भक्तिभाव समेत जिन बन्दना और अष्ट द्रव्य से पूजा की। वहां सकल परिग्रह के त्यागी दिगम्बर मुनिराज के दर्शन हुए तब श्रीधर ने सविनय निवेदन किया कि—

श्रीधर— चौपाई।

ऐसो व्रत उपदेशो मोय। जातें दुहूं लोक फल होय ॥
मुनि—अहो वच्छ सुनियौ दे कान। पंच कल्याणक व्रत परधान ॥
रिद्धि सिद्धि धन जातैं होय। अंतकाल अमरापति सोय ॥१॥
श्रीधर—कैसी विधि हम पालें जाय। सो गुरु हमको देहु बताय।
किस दिन कौनमास किह घरी। सो गुरु हमें वताओ खरी ॥२॥
मुनि—तुम कीजो यह बारह मास। मनवाछित फल पुजवें आस ॥
चार बीस तीर्थंकर भये। तिनके पंच कल्याणक थये ॥३॥

गर्भ जनम तप ज्ञान निर्वान । तिनकी तिथि लीजे शुभ मान ।।
कल्याणक दिन जब जब होय । तब तब व्रत कीजे भविलोय ।।
बरस एक में पूरौ होय । जनम जनम को पातक खोय ।।
मुनि ताको उद्यापन करे । नातर व्रत दूनौ आदरे ।।५।।

मुनिराज के उपदेश को दोनोंने शिरोधार्य करके पंच-कल्याणक व्रत उद्यापन सहित किया और सदा धर्म में सावधान रहे । आयु के अन्तमें समाधि पूर्वक देह छोड़ कर देवलोक गये ।

चौ०—इहि विधि और करे जो कोय । ऐसे फलको प्रापत होय ।।
जो मिथ्याती निन्दैं याह । घोर नरक कुण्डनमें जाय ।।१।।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररश्मि
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ।।

माएँ अनेक जनती जगमें सुतोंको, हैं किन्तु वे न तुमसे सुतकी प्रसूता ।
सारी दिशा धर रही रविका उजेला, पै एक पूरब दिशा रविको उगाती।।२२।।

भावार्थ—हे भगवन् ! सैकड़ों स्त्रियां पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं, परन्तु आप जैसा पुत्र आपकी माताके सिवाय अन्य स्त्री नहीं जन सकती । क्योंकि सम्पूर्ण दिशाएं नक्षत्रों को धारण करती हैं, परन्तु प्रकाशवान सूर्यको पूर्व दिशा ही धारण करती है ।

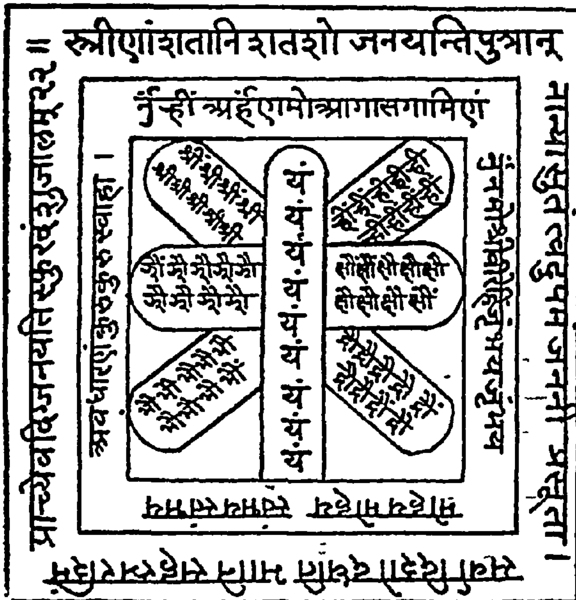

२२ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं ।

मंत्र--ओं णमो बीरेहिं जृंभय जृंभय मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि--शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच, चुड़ैल जिसे लगी हो उसे मंत्र द्वारा हल्दी की गांठको २१ बार मत्र कर चवाने से और गले में यत्र बांधनेसे उक्त सब प्रकारके दोष मिटते हैं ।

त्वामामनन्तिमुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यःशिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पंथाः ॥

योगी तुझे परम पूरुष हैं वताते, आदित्यवर्ण मलहीन तमिस्रहारी ।
पाके तुझे, जय करें सब मौतको भी, है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष-मार्ग ॥२३॥

भावार्थ—हे मुनीन्द्र ! साधु महात्मा लोग आपको परम पुरुष अत्यन्त निर्मल और अन्धकारके समक्ष सूर्य स्वरूप मानते हैं । वे साधु

तुम्हें भले प्रकार प्राप्त करके मृत्युको जीतते है इसलिये आपके सिवाय कोई दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है।

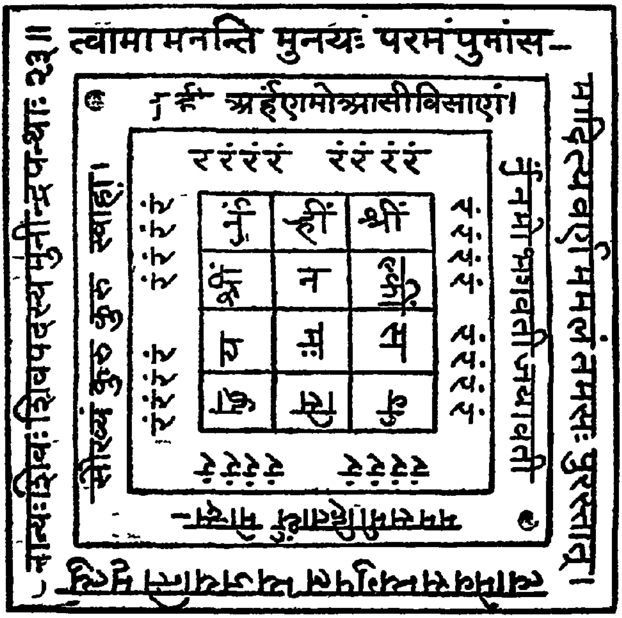

२३ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं।

मन्त्र—ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थ मोक्ष सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—पहिले मन्त्रको १०८ बार जपकर अपने शरीर की रक्षा करे पश्चात जिसे प्रेत बाधा हो उसे झाडे और यन्त्र पास रक्खे। इससे प्रेत बाधा दूर होती है।

सेठ पुत्र महीचन्दकी कथा

भारतवर्षमें उज्जैन नगर प्रसिद्ध है किसी समय वहां राजा श्रीचन्द्र राज्य करते थे वे बड़े न्यायशील, जैन-धर्मी और प्रजा पालक थे, उस नगरमें मतिसागर नामके एक सेठजी थे वे बड़े ही अनुभवी और विद्वान थे, राजा ने उन्हें मन्त्रीका काम सौंप रक्खा था। मतिसागरको एक पुत्र था उसका नाम महीचन्द्र था। राजा श्रीचन्द्रने एक दिन प्रिय महीचन्द्र को बच्चोंके साथ खेलते देखा तब उन्होंने मतिसागर मंत्रीसे कहा—

राजा—बालक खेले अरु कछु पढ़े। पढ़ लिखकर धन सुखसे बढ़े ॥
बिन विद्या शोभा नहीं कही। तातें बाल पढ़ाओ सही ॥

दोहा—मतिसागरने पुत्रकों, गुरु पै सौंप्यो जाय।
तुम उपगार करो प्रभू, विद्या देहु पढ़ाय ॥

बालक थोड़े ही दिनों में निपुण हो गया उसने लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकार की योग्यया प्राप्त कर ली और भक्तामर का तो वह पूरा ही भक्त हो गया था, जब महीचन्द पढ़-लिखकर होशियार हो गया और राजाके दरबारमें गया तो राजाने गोदमें बैठाकर कुशल-क्षेम पूछी—

राजा— सोरठा।

राजा गोद लगाय, बैठारो अति प्यारसों।
बहुविधि प्रेम बढ़ाय, कही पुत्र तुम क्या पढ़्यो ॥१॥

बालक—प्रथम मंत्र नवकार, ता पीछें विद्या सर्व।
भव भय भंजन हार, भक्तामर स्तोत्र शुभ ॥२॥

राजा श्रीचन्द उस बालककी विद्यामें उन्नति देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बहुत-सी भेट सेठ पुत्र महीचन्द्रको दी।

वहाँ उज्जैनमें एक चण्डो देवीकी मढ़िया थी, सायंकालमें उस मढ़ियाके समीप ही एक दिगम्बर मुनिराज आ विराजे और कमलासन आसीन होकर ध्यानमें लीन हो गये।

चौ०....आधी रात बीत जब गई। तब ही चण्डी कोपित भई ॥
मुण्ड माल आलंकृत गले। कर त्रिशूल मुख ज्वाला जले ॥१॥
अस्थि चर्म आभूषण संग। भूत पिशाच लिये सरवंग ॥
जिन मुनि जबही देखी जाय। कुपित अंग तन उठी रिसाय ॥२॥

देवी ...   चौपाई ।

अरे दुष्ट तपसी मति हीन । मेरे थान जोग क्यों लीन ॥
मैं सबको मदभंजन हार । तू क्यों आयो मुझ दरबार ॥ १ ॥

अधिक क्या लिखें उस पिशाचिनीने उन निस्पृह महात्मा के ऊपर सिंह, बाघ, छोड़े अग्नि बरसाई और भारी उपसर्ग किया । पर वे धीर वीर मुनिराज अपनी ध्यान और मुद्रा से बिलकुल ही न डिगे । जब राजा श्रीचन्द्र को यह समाचार मिला तब उन्होंने प्रिय महीचन्द्र को बुला कर कहा कि इस उपद्रव के शान्त करने को तुम्हीं समर्थ हो, तब महीचन्द्र ने मुनिराज के समीप ही एकान्त स्थान में बैठकर २२ और २३ जुगल काव्यका आराधन किया, तब मानस्थम्भिनी देवी ने प्रगट होकर कहा—

देवी—   चौपाई ।

कहुरे बच्छ सु कारन कौन । मोको आकर्षी धरि मौन ॥
कारज होय सो देहु बताय । मन वांछित फल पुजवूं आय ॥ १ ॥

मही—मुनि उपसर्ग होत है घनौ । तुरत उपाय करो तिहि तनौ ॥
चण्डीको दल देखो जाय । ताको माता करो उपाय ॥ २ ॥

देवी—तब देवी बोली रिस भरी । मानसथंभनी हौं मैं खरी ॥
मेरे आगे काकौ मान । छिनमें जाय करूं घमसान ॥ ३ ॥

वह मानस्थम्भिनी देवी भीमनाद करती हुई जब चण्डिका देवी पर गई, तब तो चण्डिका के हाथ के हथियार छूट पड़े भूत, प्रेतों को भागने की पड़ गई और सिंह बाघ तो शृगाल के समान दुम दबा के खड़े रह गये ।

चण्डी- चौपाई ।

शरण तुम्हारो लीनों माय । अबके यह अपराध क्षमाय ॥
दो कर जोर सो विनती करे । फिर फिर चण्डी पायन परे ॥१॥

इतने में सवेरा हो गया और मुनि महाराज का मौन खुला तब मुखचन्द्रसे अमृतवाणीमें कहने लगे हे देवी ! इसमें चंडीका दोष नहीं है इसमें अन्तरंग कारण हमारा असाता कर्म है यह बेचारी चण्डी तो बाह्य निमित्त मात्र है इसे दया कर छोड़ दो।

कृपालु मुनिराज के कहने से देवीने चण्डी को छोड़ दिया और निज स्थान को गई। चण्डी ने मुनिराज के उपदेश से जैन-धर्म का सम्यग्दर्शन अंगीकार किया, राजा ने महीचन्द्र कुमार को गले से लगा लिया और बड़ी प्रशंसा की।

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति संतः ॥२४॥

ईश, अव्यय, अचिन्त्य, अनगकेतु, ब्रह्मा असख्य परमेश्वर, एक नाना।
ज्ञानस्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता, त्यों, आद्य, सन्त तुझको कहते अनन्त ॥२४॥

भावार्थ—हे प्रभो ! सन्त पुरुष आपको अक्षय, अचिन्त्य असंख्य* आदिनाथ, समर्थ, निष्कर्म, ईश्वर, अनन्त, कामनाशक, योगीश्वर प्रसिद्धयोगी, अनेक रूप×एक स्वरूप, और ज्ञान स्वरूप निर्मल कहते हैं,

*असंख्य गुणों वाले। ×गुणपर्य्यायकी अपेक्षा अनेक रूप और जीवद्रव्यकी अपेक्षा एक वा अद्वितीय।

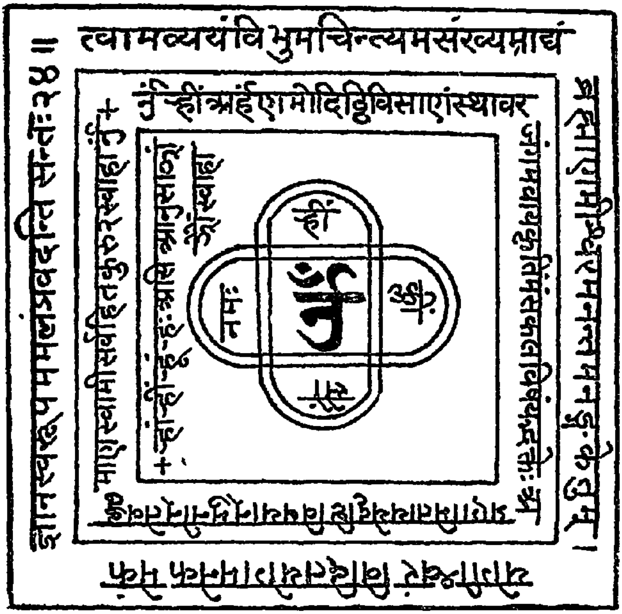

२४ ऋद्धि-ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिठ्ठिविसाणं।

मन्त्र—स्थावर जगम वायकृतिम सकलविषं यद्भक्तेः अप्रणमिताय ये दृष्टि-विषयान्मुनीन्ते वर्द्ध-माणस्वामी सर्वहितं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा भ्रां भ्रौं स्वाहा।

विधि—मंत्र द्वारा २१ बार राख मंत्रित करके दुखते हुए सिरपर लगाने से और यन्त्र पास रखने से सिर की सब पीडाएं दूर होनी हैं। प्रति दिन १०८ बार मंत्र जपना चाहिये।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्।
धाताऽसि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्-
व्यक्तं त्वमेवभगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला, कल्याण-कर्तृवर शंकर भी तुही है।
तू मोक्ष-मार्ग-विधि-कारक है विधाता है व्यक्त नाथ! पुरुषोत्तम भी तुही है॥२५॥

भावार्थ—हे भगवान! देवताओं ने आपके केवल ज्ञान बोध की पूजा की है इसलिये आप ही बुद्ध देव हो। त्रैलोक्यके जीवों के कल्या-

णकर्ता हो इसलिये आप ही शंकर हो। मोक्ष मार्गकी विधिका विधान करनेके कारण आप ही विधाता हो। और पुरुषों में उत्तम होनेके कारण आप ही पुरुषोत्तम वा नारायण हो।

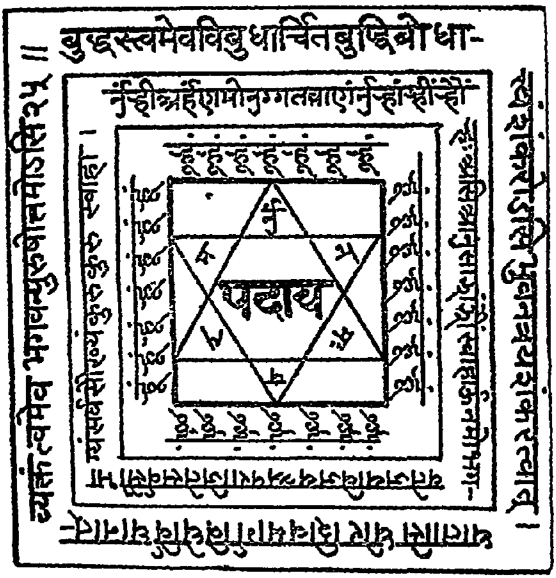

२५ ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाण।

मन्त्र—ओं ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रीं झ्रौं स्वाहा। ओं नमो भगवते जयविजया-पराजिते सर्वसौभाग्य सर्व सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि–उक्त ऋद्धि मंत्रकी आराधनासे और पासमें यंत्र रखनेसे नजर उतरती है और अग्निका असर आराधक पर नहीं होता।

राजा जितशत्रु की कथा

भरतखण्ड में कोशाम्बी नगरी श्री पद्मप्रभु जिनराज के गर्भ, जन्म कल्याण से प्रसिद्ध है। वहां किसी समय राजा जितशत्रु हो गये हैं उनको पटरानी जिनदत्ता समेत ३६ रानियां थीं सभी यौवन और सौन्दर्य सम्पन्न थीं।

एक समय वसन्त ऋतु थी, होली के दिन थे; वनस्पतियां पतझार हो करके पुनः हरी भरी हुई थीं, गुलाब फूल रहे थे, कोयल की कूक और पवन के झोंके कामिनियों को उन्मत्त

करते थे। महाराजा जितशत्रु को भी वन क्रीड़ा की सूझी और अपनी सम्पूर्ण रमणियोंको लेकर बगीचे में गये, सो उनकी रसीली सब रानियों ने खूब फाग मचाई। अबीर, गुलाल, चन्दन, केशर, कज्जल, कुंकुम को खूब भरमार की और राजा को अच्छी तरह फाग में राजी किया। ऊन्हें अपनी पिचकारी का निशाना बनाया और ऊपर से फगुवा का दावा किया। परन्तु राग के बिना फाग की समाप्ति नहीं होती इसलिये—

बांसुरि ताल मृदंग चंड ढप बाजहीं।
गावहिं सरस धमार, मधुर ध्वनि साजहीं॥
नाचहिं नागर नारि, सुमन मनो किन्नरी।
हाव भाव चित चाव, दिखावें भिन्नरी॥१॥

महाराज कौशाम्बी नरेश बन क्रीड़ासे सफलता पूर्वक लौटे जा रहे थे कि मार्ग में वहां के बन देवता ने सब रानियों को विहवल कर दिया।

दोहा—सबको लागो प्रेत जब, खेलें तब बेहाल।
और समय औरहिं भयो, करी महा विकराल॥

चौ०—कैयक भई फिर बावरी। प्रेत नाथ उनकी मतिहरी॥
कैयक बैठ रहीं बन मांह। जिनको तनमनकी सुधि नांह॥१॥
कैयक शब्द करैं विकराल। कैयक रोवत हैं बेहाल॥
कैयक फेंके सिरपर धूर। बनके बृक्ष करें चकचूर॥२॥

पाठक! पूछो तो अब ही वास्तविक फाग हुई थी। राजा जितशत्रु यह लीला देखकर अवाक हो रहे थे इतने में वहां के एक प्रसिद्ध सेठ उनसे मिले।

चौ०—महाराज काहे दिलगीर। ऐसी कहा परी है पीर॥
जा कारन ऐसे अनमने। सो तो वात कहत ही वने॥ १॥
राजा—कहा कहूं कछु कहिय न जाय। हमकों प्रेत दीनों दुख आय॥
रानी सकल भई वावरी। तातैं गति मति मेरी हरी॥ १॥
सेठ—शान्तिकीर्ति वनमें मुनिराय। तिनके पास इन्हें ले जाय।
मुनिके दर्शन पाप पलाय। सकल सांकरे छिनमें जाय॥ १॥

राजा ने वैसा ही किया और उन शान्ति चित्त शांतिकीर्ति स्वामीकी सेवामें सबको ले गये और विनय पूर्वक सबने निवेजन किया। उन निर्विकार मुनिराज ने थोड़ा सा पानी लेकर २४ और २५ वें जुगल काव्य पड़के थोड़ा थोड़ा सब पर सींच दिया। वाहरे पवित्र जैन धर्म! और वाहरे भक्तामर काव्य! वे सब रानियाँ जिनके जीवन की राजा आशा छोड़ चुके थे सचेत हो गईं। तब राजा ने मुनिराज की बड़ी स्तुति की।

चौपाई "धन्य धन्य स्वामी मति धीर। महिमा सागर गुन गंभीर॥
धन्य जैनमत इह संसार। सब पाखण्ड निवारन हार॥ १॥
धन वह गुरु धन्य वह देव। जाकी मुनि तुम कीन्हीं सेव॥
जो मैं जीभ सहस उच्चरौं। तोहू तुम गुन पार न परौं॥ २॥
अब स्वामी इतनो जस लेहु। मन्त्र एक हमहू को देहु॥
जातें उतरों भवदधि पार। बहुरि न दुख देखों संसार॥ ३॥

मुनिराज ने राजा को जुगल काव्य सिखा दिये और धर्मोपदेश देते हुए यह कहा—

चौ०—जिनकी पूजा मुनिको दान। ये दोऊ हैं मुक्ति निधान ॥
अरु नवकार बिसर नहिं जाय। जो मंगलमय मंगलदाय ॥१॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥२६॥

त्रैलोक्य-आर्ति-हर नाथ ! तुझे नमूं मैं, हे भूमिके विमलरत्न ! तुझे नमूं मैं।
हे ईश ! सर्व जगके तुझको नमूं मैं, मेरे भवोदधि विनाशि, तुझे नमूं मैं ॥२६॥

भावार्थ .. हे त्रैलोक्यकी पीड़ा हरण करने वाले तुम्हें नमस्कार है। हे पृथ्वी तलके निर्मल अलंकार। तुम्हें नमस्कार है। हे त्रिलोकीनाथ ! तुम्हें नमस्कार है। हे संसार समुद्रके सोखने वाले। तुम्हें नमस्कार है।

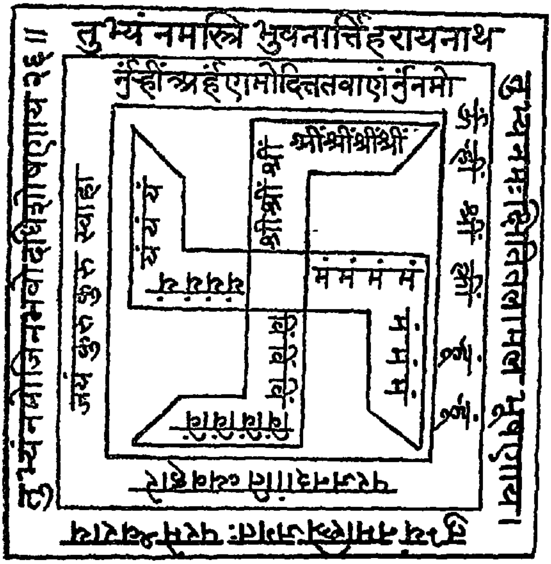

२६ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो दित्त तवाणं।

मन्त्र—ओं नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं परजनशांति व्यवहारे जयं जयं कुरु कुरु स्वाहा।

बिधि....ऋद्धि मन्त्र द्वारा १०८ वार तैल मन्त्रित करके सिरपर लगाने से आधा सीसी आदि सिरके सब रोग मिट जाते हैं।

धनमित्र की कथा

सुभद्र देशमें बरारा नाम की एक नगरी थी।

चौपाई।

बन उपवन करि शोभित खची। सुरपुर मनहुं विधाता रची।
नगर लोग सब ही धनवन्त। एक एकते बड़े महन्त ॥१॥
मन्दिर शोभित बने बजार। माणिक चौक सो परम उदार॥
पोन छत्तीस प्रजा सब सुखी। अपने करम जोग कोउ दुखी ॥२॥

उस नगरमें धनमित्र नामका एक भिखारी रहता था नितान्त दरिद्रताके कारण वह झूठन भी खाने लगा था तो भी भर पेट भोजन नहीं मिलता था। एक दिन वह बनमें गया एक मुनिराज के दर्शन हुए। विचारे धनमित्रसे नहीं रहा गया वह उन महात्माजी के चरणों में लेट गया और रोते रोते कहने लगा—

धनमित्र— चौपाई।

स्वामी! कौन पाप हम करो। जा सेती इतनो दुख भरो॥
अति दरिद्र दावानल भयो। धर्म वृक्ष सब ही जर गयो ॥१॥
अन्न वस्त्र बिन मैं बिललात। यह अतिकष्ट सहो नहिं जात॥
तातें दुख नाशन के काज। अब तुम मुनिवर करो इलाज ॥२॥

मुनीश्वर— चौपाई।

दारिद नाशनको जु उपाय। सुन हो भव्य कहों समझाय॥
भक्तामर को काव्य सहाय। पढ़ौ छबीसम प्रीत लगाय ॥१॥
शील रतन पालो तुम सोय। सिद्धि सिद्धि जातैं घर होय॥
परतियको कीजै परित्याग। अपनी तियसों ही अनुराग ॥२॥

कृपालु मुनि महाराजने उस जन्म दरिद्री धनमित्रको २६ वां काव्य सिखा दिया तो उसने शरीर शुद्धि करके जिन मन्दिरजीमें चौकीपर बैठकर जपना शुरू कर दिया। ज्यों ज्यों रात्रि गिरती जाती थी त्यों त्यों ही धनमित्रको मन्त्र जपनेमें रस आता था। जब जाप पूरा हो गया तब एक देवी नागकुमारीका सुन्दर रूप धारण करके धनमित्र के शील की परीक्षा करने को आई और कहने लगी—

नागकुमारी— चौपाई।

इन्द्र लोकतैं मैं अवतरी। रे धनमित्र तोहि आदरी॥
जो तू देहि मोहि रति दान। तो मैं करूं सकल कल्यान॥२१॥

धनमित्र— चौपाई।

कुलवन्तनकों नाहीं जोग। पर बनिता सों माने भोग।
चाहे कोटिन करो उपाय। मोतें शील न खण्डो जाय॥२२॥

नागकुमारी ने धनमित्र के साथ नाना चेष्टाएं कीं, परन्तु वे सब व्यर्थ हुईं, धनमित्र के सुमेरु चित्त को चंचल न कर सकीं। अन्त में वह अन्तर्द्धान हो गयी और परम धीर-वीर धनमित्र उपसर्ग विजयी हुआ तो कमलाकाँत देवी ने प्रकट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

मांग मांग रे सुनरे वच्छ। अब मैं तोहि भई परतच्छ॥
जो वर मांगे सो वर देऊं। भई किंकरी कोई करेऊं॥१॥

धनमित्र—मेरो दुख दारिद्र हरो। अति धनवन्त सुखी मुह करो॥

देवी—एवमस्तु! तथास्तु!! तेरे मन मनोर्थ पूर्ण होंगे।

देवी आशीर्वाद देकर देवलोक को गई और धनमित्र घर को आया तो घरका कुछ निराला ही हाल देखा वह पहचान भी न सका कि यह मेरा घर है। इसके शरीरके वसन भूषण से लोग भी न पहचान सके कि यह धनमित्र ही हैं। पड़ोसियों से इन्होंने पूछा कि यहां कहीं एक धनमित्र नामका भिक्षुक रहता था उसका घर कौन है? लोगों ने उत्तर दिया कि इसी भूमिपर धनमित्रजी की झोपड़ी थी जो अचानक ऐसी उन्नत दशा को प्राप्त हुई है, इतनेमें उनकी सौभाग्यवती स्त्री जो सदा चिथड़े पहने रहती थी इस समय सज-धज के निकल आई। धनमित्र ने सब हाल देवीकी कृपा का सुनाया और धनमित्रजी से धनने पूरी मित्रता कर ली। ब्रह्मचर्याणु व्रतधारी धनमित्रने पूजा प्रतिष्ठा शास्त्र दान-पुन्य में बहुत-सा धन खरच किया।

धर्मके प्रसादसे मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है फिर इस क्षणिक और चंचल धनका प्राप्त हो जाना तो सहज-सी बात है।

को विस्मोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥

आश्चर्य क्या गुण सभी तुझको समाए, अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगह ही।
देखा न नाथ! मुख भी तव स्वप्नमें भी, पा आसरा जगतकासब दोषने तो ॥२७॥

भावार्थ—हे मुनीश यदि सम्पूर्ण गुणोंने सघनता से आपका

आश्रय लिया, और अनेक देवोंके आश्रयसे जिन्हें घमण्ड हो रहा है, ऐसे दोषोंने आपकी तरफ यदि स्वप्नमें भी नहीं देखा तोइसमें अचरज भी क्या है ? कुछ नहीं।

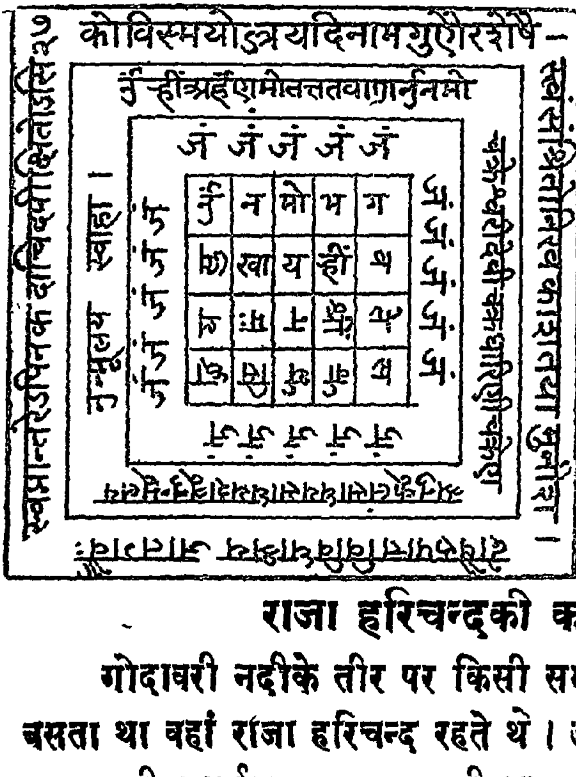

२७ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं।

मन्त्र—ओं नमो चक्रे-श्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेणानुकूलं साधाय साधाय शत्रुनुन्मूलयोमूलय स्वाहा।

विधि—ऋद्धि यंत्र को आराधना और यंत्र पास रखनेसे आराधकको कोई भी शत्रु हानि नहीं पहुंचा सकता।

राजा हरिचन्द्की कथा

गोदावरी नदीके तीर पर किसी समय चन्द्रकान्तपुर नगर बसता था वहां राजा हरिचन्द रहते थे। उनकी स्वरूपवती और चन्द्रवदनी भार्याका नाम चन्द्रमती था। दोनों दम्पतिका ऐसा गाढ़ स्नेह था मानों रामकी जानकी ही हो ! यह सब था, परंतु सन्तानके अभावमें वे दोनों सदा उदास रहते थे। ठीक है—

चौ०—बिना पुत्र घर सूनो लगै। बिना पुत्र कुल कैसे जगै॥
बिना पुत्र जग जीवन नार। बिना पुत्र तिय आवै गार॥१॥

एक दिन रानी चन्द्रमती से न रहा गया और महाराज हरिचन्द्को अपने मन की चिन्ता सुनाई।

दोहा—यह सुन नृप हरिचन्दको, बदन गयो कुम्हलाय।
जैसे अंबुज* नीर बिन, रहो होय मुरझाय ॥१॥

तब से राजा हरिचन्दको यह गलत चिन्ता व्यापने लगी थी, एक दिन वे अपने मन्त्री वर्ग समेत राज सभामें बैठे हुए थे कि इतने में एक मन्त्री ने पूछा—

मन्त्री— अडिल्ल।

देश कोष गढ़ दुर्ग, सुर्ग सम हैं घने।
सेना सुभट सुरंग, अंग शोभा बने॥
चन्द्र मुखी वर नारि, वारि रति डारिये।
ऐते पै दिलगीर सु, नृपति उचारिये ॥१॥

राजा— सोरठा।

तुम पूछी धरि नेह, चितकी चिन्ता मैं कहूँ।
सुत बिन सूनों गेह, यातें हम दिलगीर हैं ॥१॥

मन्त्री— चौपाई।

महाराज विनती चित्त धरों। चित्तकी यह चिन्ता परिहरों॥
याको अब हम करत इलाज। मनवांछित हहै सब काज ॥२॥

मन्त्री अपने घर पर गया और कुशाकी* आसन पर बैठ कर पिशाचिनीका स्मरण करने लगा। थोड़ी ही देरमें पिशाचनीने प्रगट होकर मन्त्रीसे आराधनाका कारण पूछा—

मन्त्री— चौपाई।

तुम माता इतनों जस लेहु। राजाके घर संतति देहु।
ऐसो माता करो उपाय। जातें राजाको दुख जाय ॥१॥

---

* कमल। * कांस।

देवी— चौपाई।

श्रुतकीरति मुनिवर इक रहै। इन्द्रिय पांच आपनी दहैं॥
वे उपदेश देहिं कछु जबै। रानीके सुत उपजै तबै॥१॥

यह सुनकर मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ और राजा हरिचन्द्रसे पिशाचिनी सम्बन्धी सब वृत्तान्त कह सुनाया और राजा रानी को साथ लेकर मुनिराज की सेवा में गये और उन्हें जो लगन लगी थी सो मुनिराज से निवेदन किया। तब मुनिराज ने श्री भक्तामरजी का २७ वां काव्य विधि समेत सिखा दिया। मुनिराजसे आज्ञा लेकर वे घर आये और राजाने रात्रिको मन्त्र की आराधना की जिससे धृतदेवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

मांग मांग जो इच्छा होय। मन बांछित मैं पुजऊं तोय॥
जो बर मांगे सो वर लेह। यामें मति मानों सन्देह॥१॥

राजा—जननी! सुतकी इच्छा मोह। ता कारण अवराधी तोह॥
तो प्रसादतें सन्तति होय। जैन धरम ब्रतधारी सोय॥१॥

देवी—इतने काज बुलाई मोय। मांगत लाज न आई तोय॥
कितक बात तुम मांगी राय। ह्वै है सन्तति अति सुखदाय॥१॥

देवी आशीर्वाद देकर चली गई और नौवें महीने महारानी चन्द्रमतीके गर्भसे महा प्रतापवान कान्तिवान पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसे पाकर राजा रानी और सब लोग बहुत सुखी हुए।

धर्मके प्रसादसे मोक्ष फल की प्राप्ति होती है, पुत्र रत्नकी प्राप्ति होना तो एक मामूली सी बात है।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।

स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमो वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

नीचे अशोक तरुके तन है सुहाना, तेरा विभो ! विमल रूप प्रकाशकर्ता ।
फैली हुई किरणका, तमका विनाशी, मानों समीप घनके रवि-बिम्ब ही है ॥२८॥

भावार्थ—ऊंचे अशोक वृक्षके आश्रयमें स्थिर और ऊपर की ओर निकलती हैं किरणें जिसकी, ऐसा आपका अत्यन्त निर्मल रूप सूर्यके बिम्बके समान शोभित होता है । कैसा है सूर्य ? स्पष्ट रूप जिसकी किरणे फैल रही हैं, अन्धकारके समूहको जिसने नष्ट किया है और मेघ जिसके पासमें है । अभिप्राय यह कि, बादलोंके निकट जैसे सूर्य शोभता है वैसे ही आप अशोक वृक्षके नीचे शोभायमान होते हैं । (भगवानके आठ प्रातिहार्योंमेंसे पहिले प्रातिहार्यका वर्णन इस श्लोकमें किया है ।)

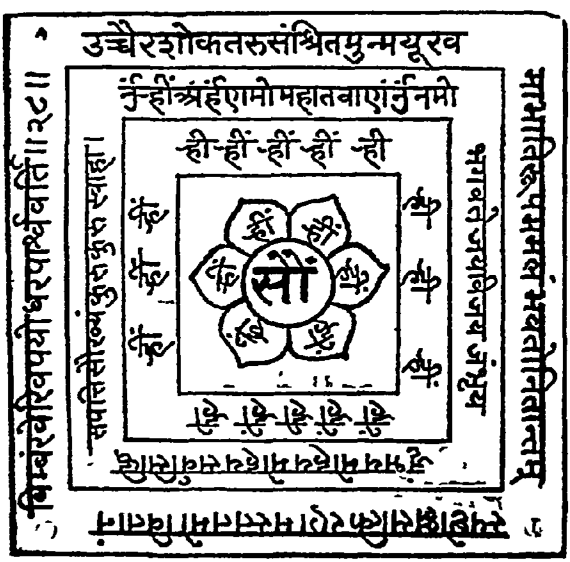

२८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवते जय विजय जृंजय मोहय मोहय सर्व सिद्धि सम्पत्ति सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—उक्त रिद्धि मन्त्र की आराधनासे और मन्त्र पासमें रखनेसे सब काम सिद्ध होते हैं, व्यापारमें लाभ होता है विजय होती है ।

रूपकुण्डली की कथा

दक्षिण देशमें धरापुरी नगरी थी वहां के राजा पृथ्वीपाल थे। उनके सात पुत्र और एक कन्या थी, कन्या बड़ी ही रूप और लावण्य सम्पन्न थी।

चौ०—ता राजाके पुत्री एक। रूप कला गुण परम विवेक॥
रूपकुंडली वाको नाम। रूप निरिख लज्जित भयो काम॥१॥
बदन चन्द्रमाके आकार। दृग हैं मृगिनीकी अनुहार॥
चम्पा कृत भोहें दो बनी। दशन जोतिलज्जित दामिनी॥२॥
कम्बु कंठ कटि है अति छीन। गजगामिनी भामिन गतिलीन॥
कोमलतासी ताकी देह। कंचन वदन अङ्ग सब नेह॥३॥
नव जोवनमें पहुंची आय। मनों विधाता रची बनाय॥
अपनो रूप देखके सोय। तृणसम और गिनै सब लोय॥४॥

एक दिन वह सखियोंको साथ लेकर बगीचे को गई और वहां नग्न दिगम्बर मुनिराजको देखा। उन्हें देखकर यह बहुत ही क्रोधित हुई और बहुत से निन्दा के बचन कहने लगी—

रूपकुण्डली— चौपाई।

अरे निर्लज्ज तजी तें लाज। रूप कुरूप धरैं किहि काज॥
मलिन अङ्ग अरु मुंडी मूंड। महा अमंगलकारी मूढ़॥१॥

उस नीच रूपकुण्डली ने रूप और सत्ता के अभिमान में आकर उन परम तपस्वी महात्माजी की घोर निन्दा की, परन्तु उन बनविहारी सन्तजी ने एक शब्द भी नहीं कहा। पर हां! उस नीच की पतित आत्मा पाप कर्म के बन्ध से ढंक गई।

परिणाम भी यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में वह रूपकुण्डली, कुरूपकुण्डली हो गई। वह उदम्बर कोढ़ से ग्रसित हो गई, शरीरके रोम खिर गये, हाथ पांव गल गये और बड़ी दुर्दशा हुई।

दोहा—तब कन्या मन में लखो, मुनि निन्दा मैं कीन।
तातैं मैं कुष्टिन भई, महापाप सिर लीन॥
अब मैं मुनि पै जाय कें, क्षमा कराऊं दोष।
वे करुणाके सिन्धु हैं, तुरत करेंगे मोक्ष॥

वह रोती बिलखती पश्चात्ताप करती हुई मुनि महाराजके पास गई और सब दुःख सुनाया। समदर्शी मुनिराज ने उसे जैन-धर्म का उपदेश दिया और सम्यग्दर्शन अंगीकार कराके श्रीभक्तामरजीका २८ वां काव्य सिखा दिया। वह रूपकुण्डली मुनि महाराज को नमस्कार करके घरको चली आई और तीन दिन-रात काव्य आराधना की।

चौ०—भोर होत उठ देखै जबै। देही सुन्दर दीसै तबै॥
मातु पिता जब लेख्यौ रूप। तब मनमें आनन्दौ भूप॥

कन्या से सब हाल जानकर राजा रानी का जैन-धर्म पर और भी अटल विश्वास हो गया। उन्होंने रूपकुण्डलीका ब्याह गुणशेखर नाम के सद्गुणी राज-पुत्रके साथ करना चाहा परन्तु उसके हृदय पर तो मुनिराज का उपदेश अंकित हो गया था उसने विवाह नहीं कराया। तब वह पिहिताश्रव मुनि के पास अर्जिका के व्रत धारण करके आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्ग को गई।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

सिंहासन स्फटिक-रत्न जड़ा, उसीमें भाता विभो! कनककांत शरीर तेरा।
ज्यों रत्न-पूर्ण-उदयाचल शीशपै जा फैला स्वकीय किरणें रवि-बिम्ब सोहे।२९।

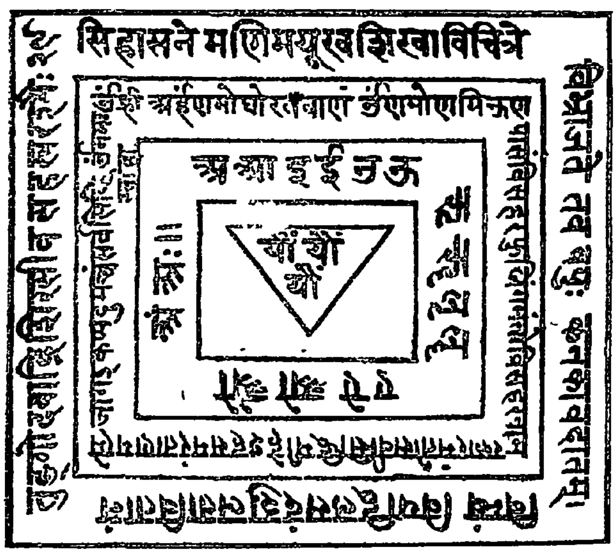

२९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर तवाणं।

मन्त्र—ॐ ह्रीं णमो ऊण पासं विसहर फुलिंगमंतो विसहर नाम रकार मन्तो सर्व सिद्धिमीहे इह समरन्ताण मण्णे जा गई कप्प दुमच्चं सर्व सिद्धिः ॐ नमः स्वाहा।

विधि—उक्त रिद्धि मंत्र द्वारा १०८ बार पानी मंत्र कर पिलानेसे और मंत्र पास रखनेसे दुखती हुई आखें आराम होती हैं।

भावार्थ—हे भगवान! मणियोंकी किरण पंक्तिसे चित्र विचित्र सिंहासन पर आपका सुवर्णके समान मनोज्ञ शरीर सूर्य के समान शोभायमान होता है। कैसा है सूर्य? आकाशमें ऊंचे उदयाचल पर्वत के शिखरपर किरन रूपी लताओंका जिस का चन्दोवा तन रहा है।

अभिप्राय यह कि, जैसे उदयाचल पर्वत के शिखरपर सूर्य बिम्ब शोभा देता है उसी प्रकार मणि जटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभायमान होता है। (यह दूसरे प्रातिहार्यका वर्णन है)।

रानी जयसेना की कथा

दक्षिण देश में अलंकापुरी नामकी एक नगरी थीं वहां राजा जयसेन राज्य करते थे वे सच्चे जैन-धर्मी और पापभीरू थे। उनकी स्त्री का नाम जयसेना था वह रूपवान तो थी परन्तु महा मिथ्यातिनी, सदा काम अग्नि से सन्तप्त रहती थी और जैन धर्म से सदा विपरीत भाव रखती थी।

एक दिन ज्ञान भूषण मुनिराज ईर्यापथ शोधते हुए अलंकापुरी में विहार करते हुए निकले। राजा जयसेन ने उन्हें तिष्ट तिष्ट कहके पड़गाहा और नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिये, परंतु उनकी कुटिल रानी जयसेना को राजा की यह कृति न रुची।

दोहा—रानी अपने चित्तमें, निन्दौ मुनिवर भेख।
कौन रूप इनने धरो, अम्बर हीन विशेख॥
देह मलिन निर्धन महा, मल आभूषण अंग।
देखत लगै डरावनौ, दर्शन याके भंग॥

इत्यादि अनेक प्रकार से अपने मनमें उस नीचनी ने उन महात्माजी की घोर निन्दा की। हां! राजा के डर से वह मुख से यद्यपि बहु मिष्ट भाषण करती थी, परन्तु अन्तरंगकी मलिनतासे उसने नाना कर्मों का बन्ध किया। तीव्र पापका फल भी कभी कभी शीघ्र उदय हो जाता है सो रानी जयसेना कुष्ट

व्याधि से व्यथित हो गई। शरीर उसका इतना दुर्गन्धित हो गया था। राजा ने उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर कहा—

राजा— चौपाइ।

मुनि ढिग जाय चरन तुम गहो। अपनो दुःख दीन ह्वै कहो॥
वे करुणा-निधि हैं मुनिराज। करि हैं तेरो तुरत इलाज॥

रानी भी मन में समझ गई कि यह मुनि निन्दा का फल है, वह पालकी में बैठकर श्री गुरु के पास गई और अपनी सब दशा सुनाई।

रानी— चौपाई।

मोकों क्षमा करो मुनिराज। शरण गहेकी राखहु लाज॥
तुम दयालु करुणा निधिसार। भानु भांति तपतेज अपार॥१॥

साधु .. चौपाई।

देव शास्त्र गुरु भक्ति करेव। चव विधि दान सुपात्रहिं देव॥
मुनि निन्दा नहिं कीजे भूल। यह सुख बेलि कुल्हाड़ी मूल॥
तुम मेरो इक कहौ करेव। अद्भुत मन्त्र कपट तजि लेव॥
कुम कुम केसर अरु घनसार। तासौं लिखियो थार मंझार॥
सो तुम थार लियो जल धोय। उत्तम जल असनापन होय॥

मुनिके वचन सुनकर जयसेना बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने श्रीभक्तामरजी का २६ वां काव्य रुचि पूर्वक सीख लिया और घरपर पहुंच कर वैसी ही क्रिया की जिससे सब देह निरोग हो गई।

धन्य है इस पवित्र जैन-धर्मको कि, जिसके प्रसादसे रानी जयसेना की दिव्य देह हो गई।

कुन्दावदातचलचामर चारु शोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥३०॥

तेरा सुवर्णसम देह विभो! सुहाता, है श्वेत कुन्दसम चामरके उढ़ेसे।
सोहे सुमेरुगिरि, कांचन कांतिधारी, ज्यों चन्द्रकान्तिधर निर्झरके वहेसे।३०।

भावार्थ .. हे जिनेन्द्र! कुन्दके पुष्पोंके समान उज्ज्वल और ढुरते हुए चमरोंसे शोभित आपका शरीर ऐसा शोभायमान होता है जैसा झरनोंकी बहती हुई चन्द्रवत स्वच्छ जल धाराओं से सुवर्णमई सुमेरुका ऊंचा तट सुशोभित होता है। यह तीसरे प्रतिहार्यका वर्णन है)

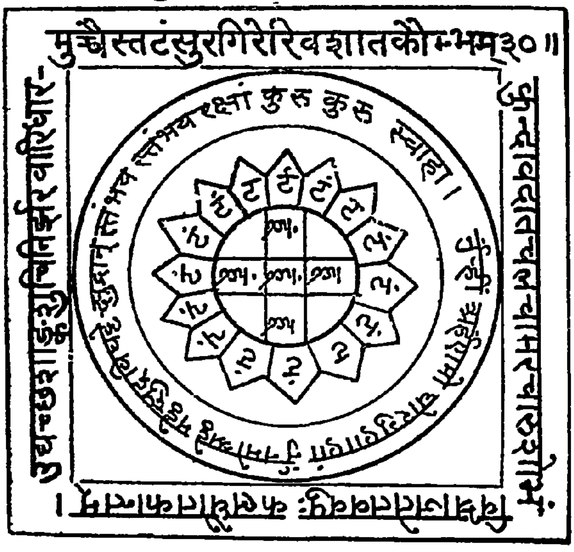

३० ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं।

मन्त्र—ओं नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रावघट्ठे क्षुद्रान् स्तंभय स्तंभय रक्षा कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्रकी आराधना से और यंत्र पासमें रखने से शत्रुका स्तंभन होता है।

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैःस्थितं स्थगित भानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम्
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

मोती मनोहर लगे जिनमें, सुहाते नीके हिमांशुसम, सूरजतापहारी।
हैं तीन छत्र शिरपै अतिरम्य तेरे, जो तीन-लोक परमेश्वरता बताते ॥३१॥

भावार्थ हे प्रभु ! चन्द्रमाके समान रमणीय ऊपर ठहरे हुए, तथा निवारण किया है सूर्यकी किरणोंका प्रताप जिन्होंने और मोतियों के समूहकी रचनासे बढ़ी हुई शोभा जिनकी, ऐसे आपके तीन छत्र, तीन जगतका परम ईश्वरपना प्रगट करते हुये शोभित होते हैं। (इस श्लोकमें चौथे प्रातिहार्यका वर्णन है)

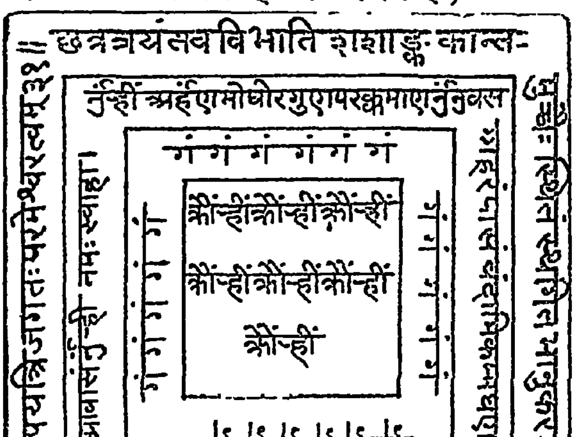

३१ ऋद्धि—ओं ह्रीं णमो गुण घोर परकमाण।

मन्त्र—ओं उवसग्गहरं पासं वन्दामि कम्मघण-मुक्कं विसहर विसणिर्णा-सिण।

मंगल कल्लाण आवासं ओं ह्रीं नमः स्वाहा।

फल. इस मन्त्रकी आराधना से राज मान्यता होती है।

गोपाल ग्वालाकी कथा

वच्छ देशमें श्रीपुर नामका नगर था वहां राजा रिपुपाल रहते थे उनके चार रानियाँ थीं जो ग्रहस्थ-धर्ममें बड़ी सावधान थीं।

चौ० रानी चार तासुकी सती। एक एकतें वहु गुणवती॥
अपने पतिकी आज्ञा करैं। शील माल आभूपण धरैं॥१॥
पूजा दान विषै अति चाव। गुरुकी सेवा हिरदै भाव॥
व्रत विधानमें ते लवलीन। श्रवण पुरान सुनत मनमीन॥२॥

उनके यहां एक ग्वाला रहता था जो उनके गाय, भैंस आदि की टहल किया करता था। एक दिन वह ग्वाला जंगलमें गया और उसको परम वीतरागी मुनि महाराजके दर्शन हुए। ग्वाला ने महात्माजी की बड़ी भक्ति भावसे वैयावृत्ति की और कहने लगा।

ग्वाला — चौपाई।

मोकों विधिना वहु दुख दयो। कारण कौन दरिद्री भयो॥
सो मुनिवर कहिये समझाय। मेरे मनको संशय जाय॥ ॥

मुनि.... चौपाई।

सुनरे ग्वाला परम अज्ञान। तै पूरव मुनि दियो न दान॥
विना दिया*पावै नहिं कोय। घरमें वस्तु धरी जो होय॥
ग्वाला — ताको है कछु आज उपाय। कै धौं जीवन योंही जाय॥
सो सव प्रगट वताओ हाल। तुम हो मुनिवर दीन दयाल॥१॥
मुनि....मिथ्या मति पावे नहिं कोय। ताको देहु जो श्रावक होय॥

* दिया देनेको भी कहते हैं और चिरागसे भी कहते हैं।

ग्वाला...पहिले मुहि अपनो कर लेव । ता पीछे मुनिवर कछु देव ॥

मुनि.... दोहा ।

प्रथमहिं सुनो गोपालजी, तुम श्रावक व्रत लेव ।
अष्ट मूल गुण धारिकें, निश भोजन न करेव ॥

ग्वाला ... दोहा ।

हे मुनिवर! गुरु देवजी, मैं नहिं जानत मूल ।
कृपया अब समझाइये, विगत विगत कर तूल ॥

मुनि ... श्लोक ।

आप्ते पंच नुतिर्जीव, दया सलिल गालनं ।
त्रिमद्यादि निशाहारो, दुम्बराणां च वर्जनं ॥

अर्थ—पंच परमेष्ठी पर श्रद्धा, जीव दया, जल गालन, मद्य मांस, मधु, रात्रि भोजन और उदम्बर फलों (वर पीपर ऊमर कठूमर और पाकर) का त्याग करना श्रावक के मूल गुण हैं।

सारांश यह कि उन कृपालु मुनिराज ने सब श्रावक की क्रिया उसे समझा दी और श्रीभक्तामरजी के ३० और ३१ वें काव्य तथा विधि समझा दिये और कहा—

मुनि ... चौपाई ।

जाहु बच्छ यह जपौ तुरन्त । शुद्धाशन प्रासुक एकन्त ॥
रक्त वस्त्र माला रुद्राक्ष । दीजे अधिक अठोत्तर लाख* ॥
मौन सहित नाशा दृग ध्यान । मन बचकाय त्रिविधि परवान ॥
थिरचित राखि विसरि मतजाय । बीसबिसे ‡पढ़ियो चितलाय ।२।

---

*१००००८ ‡नियमसे जरूर ही।

ग्वालाने मुनि महाराज को नमस्कार करके चल दिया और उनकी बताई हुई रीतिके अनुसार आराधना आरम्भकर दी जिसके प्रभाव से जिन देवताने प्रगट होकर कहा।—

देवी— चौपाई।

कहौ गुपाल सो कारन कौन। जा कारन बैठे धरि मौन॥
जो चाहो सो मोते लेहु। अव तुम सुख सों राज करेहु॥१॥
गोपाल—हे माता कह जानत नांह। जो तुम पूछत हो हम पांह॥
जो जानों इतनों जस लेहु। दारिद मेरो नाश करेहु॥२॥
देवी—इल्ली देश हरी-पुर गांव। तहं हरि वर्ष नृपति कौ ठांव॥
वाकी मीच* निकट भई आय। वाको राज लेहु तुम जाय॥१॥

फिर क्या था गोपाल ग्वाल वहीं पहुंचे तो सचमुच हरीपुर नरेश की मृत्यु हो गई और मन्त्रियोंने मतवाला हाथी छोड़ रक्खा था कि, जो उसे वशमें करेगा उसीको राजा बनावेंगे। गोपालने पहुंचते ही उसका बकरेके समान कान पकड़ लिया और हरीपुरकी राजगद्दी पर बैठकर राजसुख भोगने लगा।

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥३२॥

गम्भीर नाद भरता दश ही दिशामें, सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता।
धर्मेशकी कर रहा जयघोषणा है, आकाश बीच बजता यशका नगारा॥३२॥

---

* मृत्यु।

भावार्थ—हे जिनेश ! गम्भीर तथा ऊंचे शब्दोंसे दिशाओंको पूरित करने वाला, तीन लोकके लोगोंको शुभ समागमकी विभूति देने में चतुर और आपका यशगान करनेवाला दुन्दुभि, आप तीर्थंकर देवकी जय घोषणा प्रगट करता हुआ आकाशमें गमन करता है ! (यह पांचवां प्रातिहार्य्यका वर्णन हुआ ।)

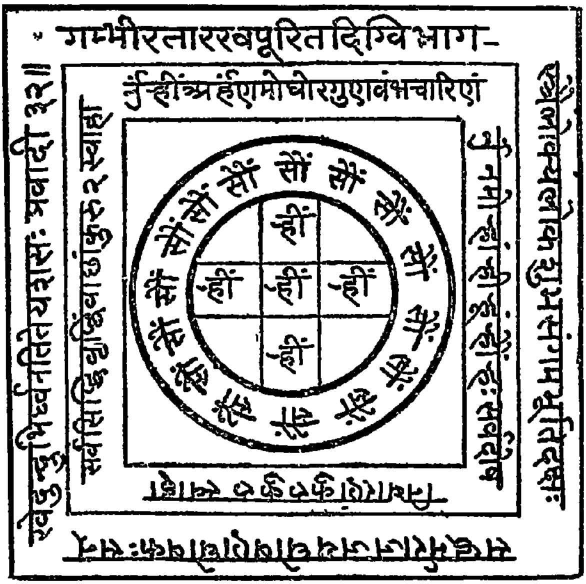

३२ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर बम्भचारिणं ।

मंत्र—ओं नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सर्व दोष निवार्णं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मंत्र द्वारा (कुआरी कन्या के हाथसे कता हुआ) सूत मंत्रित करके उसे गलेमें बांधनेसे और यन्त्र पास रखनेसे संग्रहणी आदि पेटकी सब पीड़ाएं नष्ट होती हैं ।

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभ मन्दमरुत्प्रपाता
दिव्यादिवःपतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

गन्धोद-बिन्दुयुत मारुतकी गिराई, मन्दारकादि तरुकी कुसुमावलीकी—
होती मनोरम महा सुरलोकसे है वर्षा, मनो तव लबसे बचनावली है ॥३३॥

भावार्थ—हे जिनराज ! गन्धोदककी बूंदोंसे मांगलिक मन्द मन्द पवन सहित ऊर्ध्व मुखी× और देवोपुनीत मन्दार, सुन्दरनमेरु, सुपरिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षोंके फूलोंकी वर्षा आकाशसे वरसती है सो मानो आपके वचनों की वृष्टि ही हो रही है। (यह छठा प्रातिहार्य्य है।)

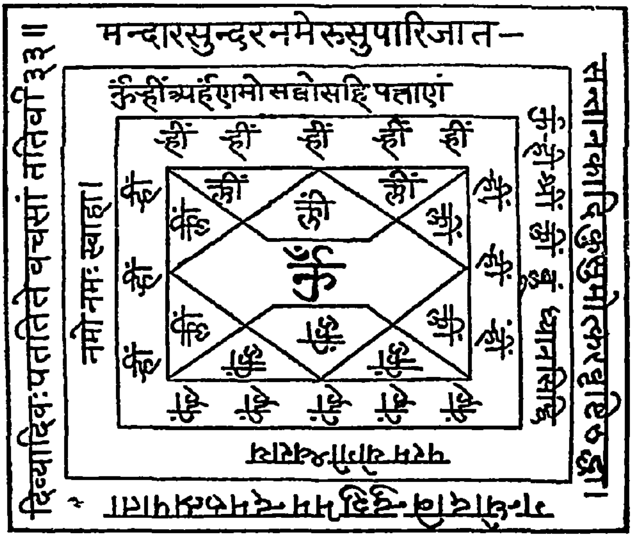

ऋद्धि—३२ ओं ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताणं।

मंत्र—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यान-सिद्धिपरमयोगीश्वराय नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धि मन्त्रसे (कुआंरी कन्या द्वारा कताये हुए) सूतको मन्त्रित करके उसका गडा बांधनेसे और झाड़ा देनेसे तथा पासमें यन्त्र रखनेसे एकतरा, तिजारी, ताप आदि सब रोग नष्ट होते हैं। धूप गुग्गलकी घृत मिली होनी चाहिये।

बाई मदनसुन्दरी की कथा

उज्जैन नगरमें राजा रतनशेखर राज्य करते थे। वे बड़े ही नीतिवान और प्रजा पालक थे। उनकी पटरानीका नाम मदनसुन्दरी था, परन्तु पूर्व जन्ममें उसने जैन-शास्त्रोंका अना-

× भगवान के समवशरणमें फूल वरसते हैं, उसके मुंह ऊपरको और डटेल नीचेको रहते हैं।

दूर किया था इससे उसने अत्यन्त कुरूप देह पाई थी। सिर पर खड़े भूरे, बाल, छोटा-सा ललाट, चपटी बहती हुई नाक, ओठों से बाहर निकले हुए दांत, मोटी कमर, पतली जंघा, बिवाई फटी एड़ियां, हाथी ऐसे कड़े सर्वाङ्गरोम, फूली हुई गर्दन और पीप बहते कान होने से वह कहने मात्रकी मदनसुन्दरी थी, इतने पर भी उसे गलित कुष्ट और खांसी तथा दमा उसकी दम लिये डालते थे, इससे कोई पास भी नहीं खड़ा होता था। राजा ने नाना चेष्टाएं कीं पर सफलता नहीं हुई।

एक दिन राजा रतनशेखर बड़ी ही चिन्तामें बैठे थे कि इतनेमें श्रीदत्त नामक एक जैनी श्रावकने आकर राजासे पूछा।

श्रीदत्त—हे राजन! आज चिन्तामें क्यों मग्न हैं?

राजा—भाई! मुझे अपना दुख कहते लज्जा आती है, "अपनी जांघ उघारिये, आपहिं आवै लाज।"

श्रीदत्त—आप स्पष्ट कहें, मैं श्रीमानकी चिन्ता मिटाने का प्रयत्न सोचूंगा।

राजा रतनशेखरने रानी मदनसुन्दरी की सब दशा सुनाई, तब श्रीदत्तने कहा कि आप श्रीमती रानी मदनसुन्दरीको स्वामी धर्मसेन मुनिके पास ले जाइये वे मुनीश्वर यह व्यथा मेटने में समर्थ हैं।

राजा—अच्छा, तो पालकी भेज कर उन्हें बुलवाइये।

श्रीदत्त—वे वीतरागी ऋषिराज, हाथी घोड़ों की कुछ

अपेक्षा नहीं करते और न उनको कुछ राजदरबार की परवाह है। आपकी अभिलाषा हो तो उन्हीं की शरणमें जाइये।

दोहा—तब राजा रानी सहित, चलौ मुनीसुर पास।
नांगे पग वनमें गये, जहं मुनि परम उदास॥
बैठे देखा छीन तन, आतम सौं लवलीन।
दै प्रदच्छना रायने, नमस्कार जुग कीन॥
धर्मवृद्धि मुनिवर दई, समाधान कहि राय।
तब कीन्हीं स्तुति घनी, राजा शीस नवाय॥३॥

राजा— अडिल्ल छन्द।

तुम स्वामी निरग्रन्थ, सु कहा चढ़ाइये।
हेम रतन गज चीर, सुढिग नहिं लाइये॥
तुम चरनन कौ सरन, गहौ मैं आयकें।
और कहाँ मैं जाऊं, तुम्हें प्रभु पायकें॥
लेहौं जिनवर धर्म, जु मुझ संकट हरो।
मुनि अपने परसाद, तिया नीकी करौ॥
तुम हौ दीन दयाल, अधिक कह भाखिये।
शरण गहे की लाज, चरण मोहि राखिये॥

मुनिराज—अच्छा मैं कल इसका उत्तर दूंगा।

महात्माजी ने राजासे कह तो दिया, परन्तु उन्होंने उलटी चिन्ता खड़ी कर ली उन्हें यह शल्य चुभने लगी थी जिससे जप, तप सब भूल गये थे, उनका ध्यान था कि यदि रानीका रोग नहीं जावेगा तो जैन धर्मकी हंसी होवेगी। इसलिये वे

सन्यास लेकर शरीर छोड़ने की भावना भा रहे थे कि इतनेमें पद्मावती देवीने प्रगट होकर मुनिराजको नमस्कार किया और कहा कि आप चिन्ता न करें। श्रीभक्तामरजी के ३२ और ३३ वें जुगल काव्य रानीको सिखा दीजिये धर्मके प्रसादसे सफलता होगी। सबेरे रानी मदनसुन्दरी मुनिराजकी सेवामें गई तो महात्माजीने श्रावकके व्रत-सहित युगल काव्य पढ़ा दिये। रानीने घर जाकर उनका विधिपूर्वक जाप किया जिससे उसका जैसा नाम था वैसा ही रूप हो गया और समस्त रोग नष्ट हो गये।

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तर भूरिसंख्या
दीप्त्याजयत्यपि निशामपिसोमसौम्याम्॥

त्रैलोक्यकी सब प्रभामय वस्तु जीती, भामण्डल प्रबल है तव नाथ ऐसा।
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्तिधारी, है, जीतता शशि सुशोभित रातको भी ॥३४

भावार्थ—हे भगवंत! देदीप्यमान सघन और अनेक सूर्यों के तुल्य आपके प्रभा मण्डलकी अतिशय प्रभा तीनों लोकके प्रकाशमान पदार्थों की कांतिको लज्जित करती हुई चन्द्रमाके समान सौम्य होने पर भी रात्रिको दूर करती है। अभिप्राय यह है कि प्रभा-मण्डल की प्रभा यद्यपि कोट्टि सूर्यके समान तेज वाली है, परन्तु आताप करने वाली नहीं है वह चन्द्रमाके समान शीतल है और रात्रिका अंधकार नहीं होने देती। यह विरोधाभास अलंकार है। (यह सातवां प्रातिहार्य है) ३४

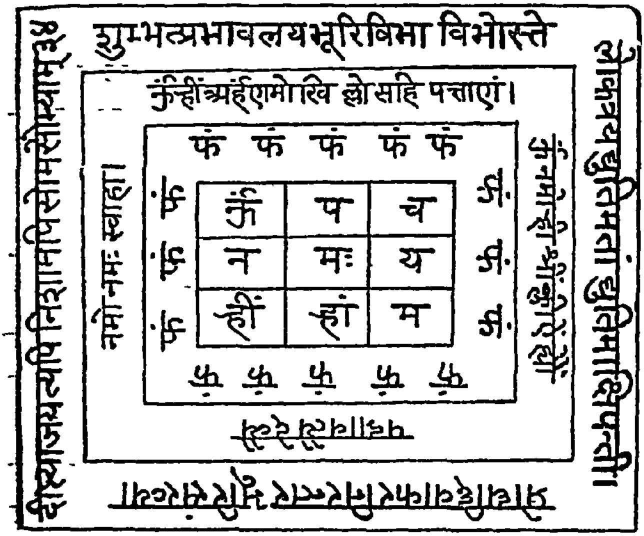

३४ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं ।

मन्त्र—नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्यौं पद्मावत्यै नमो नमः स्वाहा ।

विधि—कुसुम के रंगसे रंगे हुए सूत को १०८ ऋद्धि मंत्र द्वारा मन्त्रित करके उसे गुग्गल की धूप देकर बांधनेसे और यन्त्र पासमें रखनेसे गर्भका स्तंभन होता है असमयमें गर्भका पतन नहीं होता ।

स्वर्गापवर्गगममार्ग विमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ।३५।

है स्वर्ग-मोक्ष-पथदर्शनकी सुनेता, सद्धर्मके कथनमें पटु है जगों के ।
दिव्यध्वनि प्रकट अर्थमयी प्रभो ! है तेरी, लहे सकल मानव बोध जिससे ।३५।

भावार्थ—हे प्रभु ! स्वर्ग और मोक्ष मार्ग दर्शानेमें इष्ट, उत्कृष्ट धर्म के तत्व कथन करनेमें एक मात्र श्रेष्ठ निर्मल अर्थ और समस्त भाषाओं रूप परिणमन करने वाली आपकी दिव्य ध्वनि होती है । (यह आठवां प्रातिहार्य है) ।

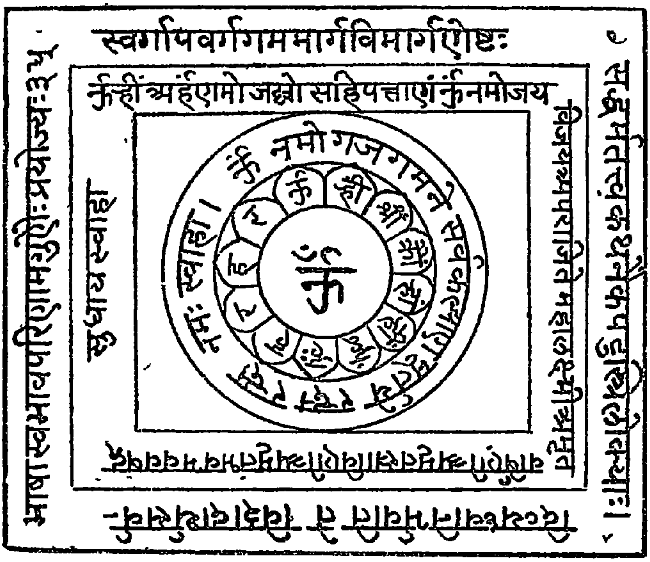

३५ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो जल्लो-सहिपत्ताणं ।

मंत्र—ओं नमो जय विजया परा-जित महा लक्ष्मी अमृत वर्षिणीं अमृत भव भव वषट् सुधाय स्वाहा ।

विधि–उक्त रिद्धि मंत्र की आराधना से यंत्र पास रखनेसे दुर्भिक्ष चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि सब नष्ट होते हैं। इस मंत्रकी आराधना स्थानक में करनी चाहिये और यंत्र की पूजा करनी चाहिये।

राजा भीमसेनकी कथा

जगत प्रसिद्ध बानारसी नगरीमें राजा भीमसेन राज्य करते थे, वे बड़े ही न्यायशील थे।

चौपाई—भीमसेन राजा राजंत। भीरु सेन सो जो बलवन्त ॥
रूप विषै रतिपति अवतार। भेद विज्ञान कला गुन सार ॥
अपने धर्म विषैं लवलीन। न्याय नीतिमें परम प्रवीन ॥
दण्ड बन्ध छेदन अरु मार। जाके राज्य नहीं संसार ॥

पूर्व असाताके विपाकसे महाराजा भीमसेन एक भयंकर रोग से पीड़ित हो गये थे, जिससे उनका शरीर नितान्त दुर्बल हो गया था, काँति उड़ गयी थी, अस्थिचर्म सूख गये थे और देखनेमें बहुत डरावने दिखने लगे थे, और भूखका पता नहीं था

नाना प्रयत्न किये पर सब व्यर्थ हुए। राजाकी यह दशा देख कर एक दिन उनकी रानी अधीर हो पड़ीं उन्हें साहस न रहा और व्याकुल होकर होने लगीं। मन्त्री लोग दौड़े आये और उन्हें धीरज बंधाया।

मन्त्री— सोरठा।

रानी सौं कहि आय, काहे कौं दुख करत है।
पूरब करम उपाय, सो तो भुगते ही बनें॥
जतन करेंगे लाख, मन्त्र जन्त्र वा औषधी।
तू मन धीरज राख, राजा नीके होयंगे॥

एक दिन बुद्धिकीर्ति मुनि महाराज विहार करते हुए बनारस नगरीमें गये, राजा उन्हें देखकर मुनिके चरणोंमें लेट गये और अपनी कमनसीबी का सब हाल कह सुनाया और निवेदन किया कि हे दीनदयाल! ऐसी कृपा कीजिये जिससे यह व्यथा दूर होवे।

मुनि— चौपाई।

कितल बात यह भूपति आय। कोटिन व्याधि दूर हो जाय।
जुगत मन्त्र हमसो तुम लेहु। छिनमें व्यथा प्रथक कर देहु॥१॥

मुनिराज तो विधिपूर्वक ३४ और ३५ वां काव्य सिखा कर बिहार कर गये, और राजाने तीन दिन बड़ी कठिन तपस्या की तब चक्रेश्वरी देवीने प्रगट होकर कहा—

देवी— चौपाई।

मांग मांग जो इच्छा होय। जो पूर्ण करूंगी तोय॥

राजा—जो माता तुम होहु सहाय तो मो व्यथा दूर हो जाय॥

देवी—श्रीजिनके चैत्यालय जाय। आदिनाथ असनान कराय॥
वह गन्धोदक ल्यावहु अङ्ग। काम रूप ह्वै है सरवंग॥१॥

देवी आशीर्वाद देकर निज स्थान को गई और राजा ने वैसा ही किया जैसा देवी कह गई थी। फिर क्या था?

चौपाई—ले गन्धोदक लायो अङ्ग। मदन रूप पायो सरवंग॥
लागत मात्र और छवि छई। कंचन बदन देह सब भई॥१॥
तब दौरे मुनिवर पै गये। कर नमोस्तु ढिग ठाढ़े भये॥
राजा मन उपजो बैराग। यह गुरु पाये पूरन भाग॥२॥
द्वादश भांति भावना भाय। लीनी दीक्षा सीस नवाय॥
अन्तकाल लीन्हों सन्यास। तजी देह कीन्हौं सुरबास॥३॥

दोहा—जैन धरम पाऊं सदा, दया प्राप्त है जाहि।
तातैं पावै परम पद, अन्य धरम में नाहिं॥१॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ति,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥३६॥

फूले हुए कनकके नव पद्मकेसे, शोभायमान नखकी किरणप्रभासे—
तूने जहां पग धरे अपने विभो! हैं नीके वहां विबुध पंकज कल्पते हैं॥३६॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! फूले हुए सुवर्णके नवीन कमल समूहके सदृश कान्तिवान और चहुं ओर फैलती हुई नखोंकी किरणोंके समूह से सुन्दर ऐसे चरण आप जहां रखते हैं वहां देवतागण कमलोंको रचना करते हैं।

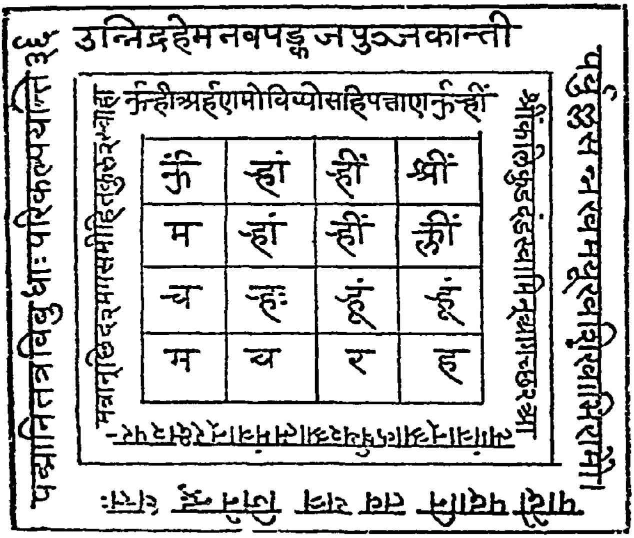

३६ ऋद्धि--ओं ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहि पत्ताणं।

मन्त्र—ॐ ह्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन आगच्छ आगच्छ आत्ममन्त्रान् आकर्षय आकर्षय आत्ममन्त्रान् रक्ष रक्ष परमन्त्रान् छिन्द छिन्द मम समीहित कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मंत्रकी आराधनासे और यंत्र पास रखनेसे सम्पत्ति लाभ होता है। लालपुष्प द्वारा १२००० जाप करना चाहिये और यत्रकी पूजन भी करते रहना चाहिये।

सुरसुन्दरी की कथा

पटना नगरमें राजा धारिवाहन राज करते थे उनकी रानी का नाम क्षत्रीसेना था उनके सात पुत्र थे और एक कन्या थी, कन्या का नाम सुरसुन्दरी था जैसा उसका नाम था वैसा ही वह रूपवान और मनोहर भी थी, परन्तु जिन-धर्म में अनुराग न होने से उसे विना सुगन्धि का ही फूल कहना चाहिये। उसे अपने स्वरूप का वड़ा गुमान था, अपने रूप के गर्व के मारे वह औरोंको तिनका के समान तुच्छ समझती थी। राजा रानी को एक ही लड़की होनेसे उन्होंने उसे लाड़ली भी वना लिया था इससे वह उनके भी सिर चढ़ गई थी और उन दोनों की कुछ परवाह भी नहीं करती थी। ठीक है—

चौ०—कन्या जिनहु चढ़ाई मूढ़। तिनने पकरी गजकी सूंढ़ ॥
जिन बेटीको सिख बुध दई। तिनकी कीरति घर घर भई ॥

यद्यपि सुरसुन्दरी बड़ी ढीठ थी फिर भी माता पिता को बहुत प्यारी थी। एक दिन वह पालकीमें चढ़कर जिनमन्दिर को गई और बहुत सी सहेलियों को साथ ले गई। उस मूर्खा ने जिनराज की दिगम्बर प्रतिमा की बड़ी ही निन्दा की। वह कहने लगी कि इनके न तो आभूषण हैं न स्त्री ही है और तो क्या कपड़े तक नहीं हैं जब इन की खुद ही की यह दशा है तो ये दूसरों को क्या दे सकते हैं? सुख की आशा से इन्हें पूजना मानों घृत के हेतु पानी का विलोवना है। सुरसुन्दरी ने यह भी कहा कि देवतों में कृष्णजीको ही धन्य कहना चाहिये, जो दिव्य वस्त्र आभूषणों से सजे हुए हैं गोपियों और ग्वाल-बाल मण्डलीके साथ क्रीड़ा करते हैं और सोलह हजार रमणियों के साथ मौज करते हैं।

जिन मन्दिर से निकल कर वह सुरसुन्दरी बाहर आई तो थोड़ी ही दूर पर एक परम दिगम्बर वीतरागी मुनिराजको देखा और उन्हें भी निर्लज्ज, म्लेक्ष दरिद्री आदि अपशब्द कह डाले। वह पापिनी रूप के अभिमान में ऐसी अन्धी हो गई कि अपने मुंहमें से पान का उगाल उन निस्प्रेह महात्माजी के ऊपर उगल दिया।

बहुत पाप कर्मों का विपाक तत्काल ही रस दे देता है और पूर्वोपार्जित शुभ कर्म अशुभ रूप परणम जाते हैं, सो

सुरसुन्दरीको भी ऐसा ही हुआ। देव और गुरुकी निन्दा करते ही तत्काल उसका सर्व शरीर कान्ति प्रतापहीन अत्यन्त कुरूप हो गया! जब वह घर आई तो सखियों ने जिनराज और मुनिराजकी निन्दाका सब वृत्तान्त राजा को सुनाया। महाराजा धारिवाहन पुत्री की यह करतूत और दशा देखकर बहुत चिन्तित हुए अन्त में उन्होंने नगरकी श्रावक मण्डली की सम्मति से जिनराज की महान पूजा की और उन्हीं मुनिराज की शरण में गये। नमस्कार करने पर मुनिराज ने धर्म वृद्धि दी और कहा, राजन्! कुशल से तो हो?

राजा—गुरुदेव के चरण प्रसाद से मंगल होगा।

मुनि० —ऐसी बात क्यों कही? खुलासा करके कहो।

राजा—मेरी सुरसुन्दरी नाम की कन्या ने जिनदेव और जिनगुरु की निन्दा करके अपने पांव पर अपने हाथसे कुल्हाड़ी पटक ली है वह नितांत रोगी और कुरूपा हो गई है, कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे यह असाता दूर हो।

उन महात्माजी ने एक घड़ा पानी मंगवाया और 'उन्निद्र' आदि छत्तीसवां काव्य पढ़ के कहा कि, इस पानी से बाई को स्नान कराओ।

सुरसुन्दरी ने अपनी कृति पर बहुत पश्चात्ताप किया और मंत्रित जल से स्नान किया!

जिसके प्रसाद से उसका पहिले से भी सुन्दर उर्वशी जैसा रूप हो गया उसकी जैनमत पर पूरी श्रद्धा हो गई, फिर उसने

अपना विवाह नहीं किया। उन्हों मुनिराज के पास अर्जिका के व्रत लिये और आयु के अन्त में समाधि पूर्वक शरीर छोड़ कर वह देवसुन्दरी देवलोक को गई।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि॥३७॥

तेरी विभूति इस भांति विभो ! हुई जो, सो धर्मके कथनमें न हुई किसीकी।
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र-हर्ता होता न तेज रवि-तुल्य कहीं ग्रहोंका ॥३७॥

भावार्थ हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेशके समय समवसरणमें पूर्वोक्त प्रकारसे जैसी विभूति आपकी हुई वैसी अन्य हरिहरादि देवोंकी नहीं हुई सो ठीक ही है जैसी अन्धकार नाशक प्रभा सूर्यकी होती है, वैसी प्रकाशमान तारागणोंकी कहां हो सकती है ?

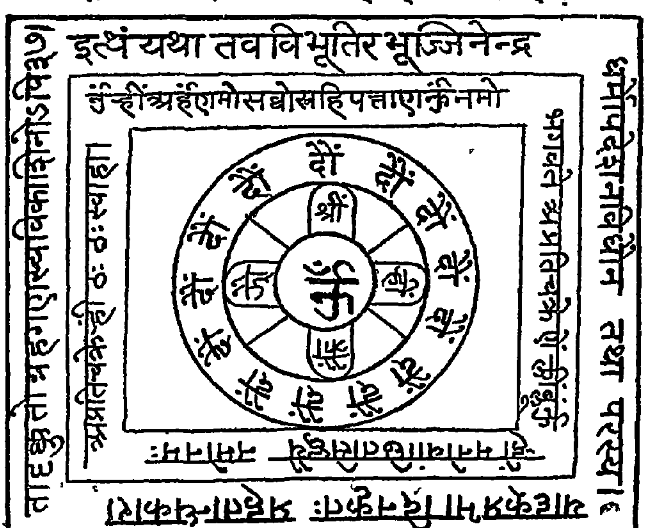

३७ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं।

मन्त्र—ओं नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ओं ह्रीं नमो वांछित सिद्धयै नमो नमः अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा।

विधि--ऋद्धि मंत्र

द्वारा २१ बार पानी मंत्रकर मुंहपर छीटा देनेसे और यंत्र पास रखनेसे दुर्जन वश होता है, उसकी जीभका स्तंभन होता है (बोल नहीं सकता)

सेठ जिनदास की कथा

भगवान पद्मप्रभु के गर्भ जन्म कल्याणक होनेसे कोसाम्बी नगरी जैन जनता में बहुत विख्यात है वहां पर जिनदास नाम के एक सेठ रहते थे। एक बार उन्हें व्यापार में बड़ा घाटा लगा और सब सम्पत्ति खो बैठे। बेचारे बड़े व्याकुल हुए और खूब रोये। उनकी ऐसी विकल दशा सुनकर वहां के एक दूसरे सेठ सुदत्तजीने सेठ जिनदासजीको अपने घर पर बुलवाया और बहुत धीरज बंधाया। उन्होंने यह भी कहा कि, आपने कुछ अनाचार में तो धन खोया नहीं है, जुआ और वेश्याबाजी भी नहीं की है व्यापार किया है। यदि टोटा लग गया है तो क्या चिन्ता है फिर कमाओगे। इस प्रकार सम्बोधन करके उन्हें खासी पूंजी की मदद दी।

सेठ जिनदासजीने पुनः उद्योग किया परन्तु भाग्यने उनको पुनः टक्कर दी और वे फिर से तंगदस्त हो गये, विरानी पूंजी भी खो बैठे। निदान ये एक दिन स्वामी अभयचन्द मुनिराज के पास गये और भक्ति पूर्वक नमस्कार करके खड़े हो गये। मुनिराज ने धर्म वृद्धि दी, कुशल-क्षेम पूछ कर बैठने को कहा और बहुत सा धर्मोपदेश दिया।

सेठ जिनदास ने अवसर पाकर अपने मनकी व्यथा सुनाई और व्यापार सम्बन्धी सब वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर मुनि

महाराज ने 'इत्थं यथा' आदि ३७ वां काव्य उन्हें सिखा दिया और सिद्ध करने की सम्पूर्ण रीति बता दी।

सेठ जिनदास ने मन्त्र की विधि पूर्वक साधना की और १००८ बार जाप किया। आधी रात नहीं होने पाई थी कि वहां की बनदेवी ने प्रगट होकर एक अमूल्य रत्न सेठजी के हाथ में रख दिया और कहा—

देवी—हे भव्य जिनदास ? तू ने मुझे क्यों स्मरण किया है ? तेरे मन में जो इच्छा हो सो मांग।

जिनदास—हे माता ? मैं महा दरिद्री हूँ मुझे इस संकट से बचाओ।

देवीने जिनदासजी को एक अंगूठी देकर कहा कि, इस अंगूठी के प्रसाद से तुम्हारी मनोकामनाएं पूरी होंगी। देवी तो इतना कह के चली गई पर जिनदासजी मुनिराज के पास वह रत्न और मुद्रिका लेकर गये और रात्रिका सब वृत्तान्त कह सुनाया।

एक दिन सेठ जिनदासजी परदेश को जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें बहुत से चोर मिलें जो राजा का भण्डार चुरा लाये थे और बहुतसे हीरा जवाहिरातोंकी गठरी बांधे हुए थे। परस्पर की कुशलके पश्चात चोरों ने सेठजी से कहा कि हमारे पास जो रतन हैं वे आप खरीद लें और नगदी रुपया वा सोना चांदी दे दें। सेठजी ने समझ लिया कि यह माल निस्सन्देह चोरी का है, निदान उन्होंने चोरों को रतन मुद्रिका दिखाई

और खूब फटकार लगाई। नतीजा यह हुआ कि चोर भाग गये और सारी सम्पदा छोड़ गये। सत्य वक्ता सेठ जिनदासजी यद्यपि दरिद्रता के मारे हुए थे, परन्तु उन्होंने सत्य नहीं छोड़ा वे जानते थे कि—

दोहा—सत मत छोड़ो सूरमा, सत छोड़े पत जाय।
सतकी बांदी लक्ष्मी, मिलै घनेरी आय॥

बहुत कुछ सोच विचार कर वे कोसाम्बीनरेश धरमपालजी के दरबार में सम्पूर्ण दौलत लेकर गये और उन्हें सौंप कर सब समाचार सुनाया। राजा ने अपना सब माल पहिचान लिया और सेठ जिनदासजीकी ईमानदारीसे प्रसन्न होकर सर्व सम्पदा उन्हें सौंपकर बड़ी प्रशंसा की।

देखो! श्रीभक्तामरके काव्यके प्रभावसे सेठ जिनदासजी विपुल सम्पत्ति के अधिकारी हो गये।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयंभवति ना भवदाश्रितानाम्।३८।

दोनों कपोल झरते मदसे सने हैं, गुञ्जार खूब करती मधुपावली है।
ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे, पावें न किन्तु भय आश्रित लोक तेरे।३८।

भावार्थ—हे जिनराज! झरते हुए मदसे जिसके गण्डस्थल मलीन तथा चंचल हो रहे है और उनपर उन्मत्त होकर भ्रमण करते हुए भौंरे

अपने शब्दों से जिसका क्रोध बढ़ा रहे हैं, ऐसे मतवारे और ऐरावतके समान हाथी को अपने ऊपर झपटता हुआ देखकर आपके भक्तों को भय नहीं होता है।

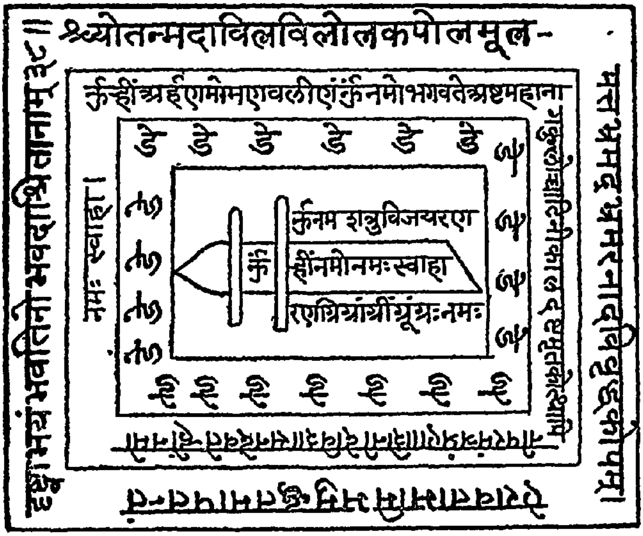

३८ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो मण-चलीणं ।

मन्त्र—ओं नमो भगवते महानागकु-लोच्चाटिनी काल-दष्टमृतकोत्थापिनी परमन्त्र प्रणशिनी देविदेवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा ।

फल--ऋद्धि मंत्र जपने, यन्त्र पासमें रखने से धन लाभ होता है।

सेठ सोमदत्त की कथा।

वीरपुर नगर में राजा सोमदत्त राज्य करते थे। उनके सुखानन्द नामका एक ही पुत्र था सो भी दुराचारी और जुआड़ी था, उसकी कुसंगति, दुराचार की परिणति देखकर वहां के निकटवर्ती महाराजने सोमदत्तकी सारी सम्पत्ति लुटवा ली और उन्हें गद्दी से उतार दिया। यहां तक कि उन्हें भोजन तक के लिये मुंहताज कर दिया।

प्रथम तो पुत्र कुपुत्र, दूसरे घर में दारिद्र होनेसे बड़े ही आकुलित रहते थे। बेचारे सोमदत्तजी एक दिन स्वामी वर्धमान

मुनि की बन्दना को गये और अपनी सब दुर्दशा कह सुनाई। उनसे यह भी कहा कि ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरी दरिद्रता दूर हो। उन कृपालु मुनिराजने इन्हें श्रीभक्तामरजीका ३८वाँ काव्य विधि पूर्वक सिखा दिया। उसकी उन्होंने भले प्रकार आराधना की और मन्त्र सिद्ध करके धनकी चिन्तामें हस्तनापुर गये।

वहां के राजा विजयसेन के यहाँ एक बड़ा मत्त हाथी था जो बहुत ही प्रचण्ड और उद्दण्ड था। एक दिन वह महावतों की असावधानी से छूट पड़ा और शहर में प्रवेश करके घोर उपसर्ग करने लगा। सैकड़ों नर-नारियों को उसने चीर डाला, हजारों दूकानें कुचल डालीं, बहुतसे वृक्ष उखाड़ कर फेंक दिये तथा लोगों का घर से बाहर निकलना असम्भव कर दिया। राजा विजयसेन और उनकी सेना ने नाना प्रकार की चेष्टाएं कीं, परन्तु वे सब व्यर्थ हुईं। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि, जो कोई हाथी को वश में करेगा उसे अपनी प्रिय पुत्री परिणाऊंगा और चौथाई राज्य का स्वामी बनाऊंगा। यह हाल जब सोमदत्त ने सुना तो उन्होंने 'श्च्योतन्मदा' आदि ३८ वाँ काव्य पढ़ के हाथी का कान पकड़ लिया और उसपर सवार होकर दरबार में पहुंचे। राजा बहुत प्रसन्न हुए परन्तु इनका जाति कुल ज्ञात न होने से कन्या न देकर मनमाना धन देने का निश्चय किया।

जब राजकुमारी मनोरमा की दृष्टि सोमदत्त पर पड़ी तो मदन के जोर से वह विह्वल हो गई और अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी। ज्यों त्यों कर राजा विजयसेन हाथीकी विपत्ति

से मुक्त हुए थे कि, यह दूसरी आफत आ खड़ी हुई, उन्होंने नाना उपचार किये, पर मूर्छा बढ़ती ही गई। राजा ने घोषणा करवा दी कि जो कोई मनुष्य इसे सचेत करेगा उसे यह पुत्री और आधा राज्य दे दूंगा। निदान सोमदत्तजी मन में श्रीभक्तामर काव्य का स्मरण करके राजा के साथ राजकन्या के पास गये। वह उन्हें देखते ही सचेत हो गई और बोली क्यों यह भीड़ जमा हुई है? मुझे स्नान कराओ, भूख लगी है।

यह चमत्कार देखकर मन्त्रियों ने सोमदत्तजी का जाति कुल आदि सारा वृत्तान्त पूछा। तब उन्होंने सविस्तार हाल सुनाया, जिसे सुनकर राजा विजयसेन ने अपनी प्रिय पुत्री मनोरमा का विवाह सोमदत्तजी के साथ कर दिया और अपना आधा राज्य उन्हें सौंप दिया। राजा सोमदत्तजी ने मनोरमा जैसी रानी पाकर बड़ा हर्ष मनाया अपने सब कुटुम्बको वीरपुर से हस्तापुरमें बुला लिया और श्रेणिक और रानी चेलनाके समान राज्य करके ग्रहस्थ-धर्म पालन करने लगे।

देखो! राजा सोमदत्त को भक्तामर के काव्य के प्रभाव से कुबेर जैसी सम्पदा और इन्द्रानी जैसी मनारमा रानी प्राप्त हुई।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥

नाना करीन्द्रदल-कुम्भ विदारके की-पृथ्वी सुरम्य जिसने गजमोतियों से।
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करै न उसीपै तेरे पदादि जिसका शुभ आसरा है।३९।

भावार्थ—हे प्रभु! हाथियोंके मस्तक फोडने से रक्तमें भींगे हुए मोती जिसने धरती पर विखरा दिये है और पकड़ने के लिये जिसने चौकड़ी बांधी है ऐसा सिंह भी, आपके जुगल चरणों रूप पर्वतों का आश्रय लेनेवाले पुरुप का कुछ भी नहीं कर सकता है।

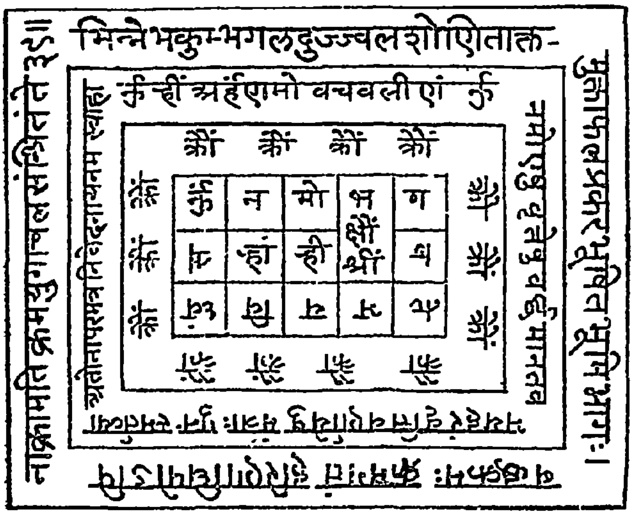

३९ ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो वचवलीणं।

मन्त्र—ओं नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भय हर वृति वर्णायेषु मन्त्राः पुनः स्मर्तव्या अतोना पर मन्त्रनिवेदनाय नमः स्वाहा।

फल—रिद्धि मन्त्र जपने और यन्त्र पास में रखने से सर्पका भय नहीं रहता।

सेठ देवराजजी की कथा।

श्रीपुर नगरमें एक सेठजी रहते थे वे जवाहरातका व्यापार करते थे उनका नाम देवराज था। उन्होंने स्वामी वीरचन्द्र मुनिराज के पास से श्री भक्तामरका अच्छा अभ्यास किया था। देवराजजी को एक पुत्र भी था और वह पिता का बड़ा भक्त था, नाम उसका अमृतचन्द था। एक दिन देवराज ने

व्यापार के लिये रत्नद्वीप को जाने की तैयारी की और प्रिय अमृतचन्द को पास में बैठाकर कहा कि घर की चौकसी रखना तिसपर पुत्र ने विनय की कि, मैं ही परदेश को चला जाऊंगा आप घर में धर्म-साधन कीजिये। विद्वान देवराज ने प्रिय अमृतचन्द्रको नादान समझ कर विदेश नहीं जाने दिया आप. स्वयम् रत्नद्वीप को गया, साथ में कुछ वणिक मण्डली भी थी।

चलते चलते वे अकस्मात रास्ता भूल गये और ऐसे भयानक जंगल में पहुंचे जहाँ आदमी का पता नहीं था। हाथी, रीछ, बंदर, सर्प, सिंह आदि से वह जंगल भरपूर था। एक विकराल सिंह मानो भयानक काल ही था वह इनके सामने रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। यह हाल देखकर साथ के सब लोगों के होश उड़ गये और बड़े घबड़ाये। तब धीरवीर देवराज ने 'भिन्नेभकुम्भ' आदि ३९ वां काव्य स्मरण किया। जिसके प्रभाव से वह प्रचण्ड सिंह कुत्ते के समान पूंछ हिलाता हुआ इनपर भक्ति दर्शाने लगा, वह बहुत से गज-मुक्ता* बटोर कर लाया और सेठ देवराजजी के सन्मुख रख दिये। सेठ देवराज ने सिंह से कहा कि तुम हिंसक जीव हो प्राणियों का घात करते हो यह तुम्हारे लिये बड़ी निन्दाकी बात है। इस प्रकार धर्मका उपदेश सुनने से उसे जातिस्मरण× हो गया और सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया जिससे उसका चित्त बड़ा ही नम्र हो गया यहां तक कि उसने उस दिन से फिर कभी हिंसा नहीं की।

* हाथी के मस्तक में से निकलते हैं। × पूर्वभवकी याद।

सेठ देवराज और उनके साथियों ने रतनदीप में पहुंच कर वहां क्रय* विक्रय× करके घर का रास्ता लिया और सकुशल श्रीपुर पहुँचे। सिंहके समागमसे मृत्यु टल गई जान कर सब ने बड़ी खुशी मनाई, जिनराजकी महापूजा भावपूर्वक की और धर्मकी खूब प्रभावना फैलायी। वे वीरचन्द स्वामकी वन्दनाको गये और उन्हें सब समाचार सुनाया तब मुनि महाराज ने कहा यह तो किंचित बात:है श्रीभक्तामरजीके प्रभावसे कोटि कोटि विघ्न क्षण भर में टल जाते हैं। पश्चात सेठ देवराज ने सिंह के दिये हुए अच्छे अच्छे गजमुक्ता वहां के राजा श्रीपाल की सेवा में भेंट किये और सिंह के उपद्रव का सब हाल सुनाया जिससे राजा और दरबार के लोगों पर जैन-धर्म का बड़ा प्रभाव पड़ा और सब ने जैन-धर्म अंगीकार किया।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

झालें, उठे, चहुं उडें जलते अगारे, दावाग्नि जो प्रलय वह्नि समान भासे।
संसार भस्म करने हित पास आवे, त्वत्कीर्तिगान शुभ वारि उसे शमावे।४०।

भावार्थ—हे प्रभु! प्रलयकाल की पवनसे उत्तेजित हुई अग्नि के सदृश तथा उड़ रहे हैं ऊपरको फुलिंग जिससे जलती हुई उज्ज्वल और सम्पूर्ण संसार को नाश करने की मानो जिसकी इच्छा ही है ऐसी

---

* खरीदना। ×वेचना।

सन्मुख आती हुई दावाग्निको आपके नाम का कीर्तन रूप जल शान्त करता है।

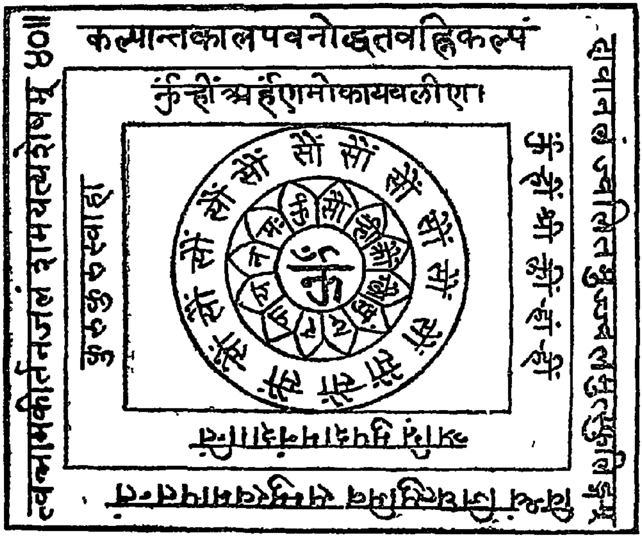

४० ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हंणमो काय-वलीणं।

मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं अग्नि उप-शम कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मंत्र जपने से और यन्त्र पास रखने से अग्निका भय मिट जाता है।

सेठ लक्ष्मीधरजी की कथा

पोदनापुर नगर में लक्ष्मीधर नाम के एक सेठ रहते थे जैसे वे नाम के लक्ष्मीधर थे वैसे लक्ष्मी से सम्पन्न भी थे। जैन-धर्म पर उनका दृढ़ विश्वास होने से जिनपूजा सुपात्र दान और संयम समयमें सदा सावधान रहते थे। उन्होंने भक्तामरजी के काव्य सकलसंजमी मुनिराज के पास विधि पूर्वक सीखे थे। उनके पुत्र का नाम गणधर था वह माता पिता का बड़ा आज्ञा-कारी और सुशील था।

एक दिन सेठ लक्ष्मीधरजी ने अपने प्रिय पुत्र गणधर को पास में बैठा कर कहा कि न्याय पूर्वक उद्योग करके धन संचय करना ग्रहस्थों का कर्तव्य है, क्योंकि संसार के निर्वाह का

दारमदार धन ही पर निर्भर है इसलिये वाणिज्य के हेतु मैं सिंहलद्वीपको जाता हूं। पहिले तो प्रिय पुत्र गणधरने स्वयम् विदेश जानेकी पिता से प्रार्थना की, परन्तु पिता की गहन अभिलाषा देख वह चुप हो गया।

सारांश यह कि उभय सम्मति से सेठ लक्ष्मीधरजी ने विदेश जाने की तैयारी की और बहुत सी वणिक मण्डली के साथ माल की गाड़ियां घोड़े आदि भरवा कर सिंहल द्वीप को चल दिये। रास्ते में एक जगह डेरा डाले पड़े हुए थे और रसोई बना रहे थे कि अकस्मात उनके डेरे में आग लग गई चहुं ओर घासके झोपड़े होने से अग्नि ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया, लक्षावधि रुपयोंका माल बिलकुल जलकर सर्वनाश हो जाने में किंचित सन्देह नहीं था। सब व्यापारी मण्डली ने रुदन और हा! हा! कारका कोलाहल मचा रक्खा था।

पर सेठ लक्ष्मीधर ने धीरज नहीं छोड़ा, उन्होंने बड़े गंभीर भाव से स्नान करके स्वच्छ आसन पर कमलासन अंगीकार किया और 'कल्पान्तकाल' आदि ४० वें काव्यका १०८ बार जाप किया। जिसके प्रसाद से चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई और उसने एक छोटे से गिलास भर पानी देकर कहा, कि इसे जहां तहां खींच दो, ऐसा कह देवी जिन धामको चली गई। लोगों ने वैसा ही किया जिससे तुरन्त अग्नि शान्त हो गई। लोग यह कौतुक देख बहुत विस्मित हुए और सबने सेठ लक्ष्मीधरजी का बड़ा उपकार माना।

पश्चात वे सब मनोवांछित स्थान पर गये और अपने देश से जो वस्तु ले गये थे उन्हें बेचकर और वहां की वस्तुएं खरीद कर अपने घरको लौट आये। घरपर पहुंच कर सबने पूजा दान-पुण्य में बहुत द्रव्य व्यय किया। एक दिन वे वहां के राजा मणिकचन्द्रजी की सेवा में गये, उनसे प्रचण्ड अग्नि बढ़ने और उनके शान्त होने का वृतान्त सुनाया। उसे सुनकर राजा ने यह उत्तर दिया कि इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है धर्म के प्रसादसे क्या नहीं होता ? धर्म की ऐसी ही महिमा है कि कठिन से भी कठिन कार्य्य सुगमता से सिद्ध हो जाते हैं।

रक्तेक्षणं समदकोकिल कण्ठनीलं।
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम्॥
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशङ्क—
स्त्वन्नामनागदमनीहृदियस्यपुंसः॥४१॥

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिककंठ-समान काला, फुंकार सर्प फण को कर उच्च धावे।
निःशंक हो जन उसे पगसे उलांघे, त्वन्नाम-नागदमनी जिसके हिये हो।४१।

भावार्थ—जिस पुरुषके हृदय में आपके नाम की नागदमनी जड़ी है वह पुरुष, [लाल नेत्रवाले, मदोन्मत्त, कोयलके कंठ समान काले, क्रोध से ऊपरको उठाया है फण जिसने और डसनेके लिये झपटते हुये सांपको अपने पैरों से कुचलता हुआ चला जाता है।

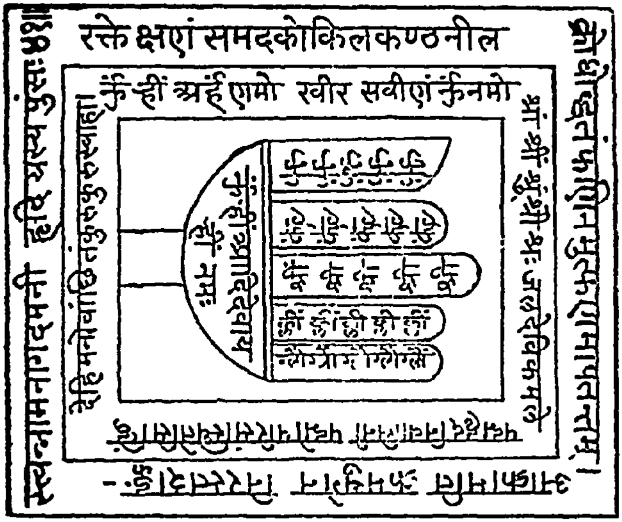

४१ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं।

मन्त्र—ओं नमो श्रां श्रीं श्रूं श्र जलदेविकमले ह्रद-निवासिनी पद्मोप-रिसिस्थिते सिद्ध देहि मनोवांछित कुरुकुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्र जपनेसे और यन्त्र पास रखनेसे राज दरवार में सम्मान होता है और झाडनेसे सर्प का विष उतरता है।

श्रीमती दृढ़व्रता की कथा

किसी समय नर्मदा नदीके किनारे सर्वदापुर नामका एक नगर था। वहां एक बड़े ही धनाढ्य सेठ रहते थे, उनके समान उस नगर में और कोई लक्ष्मीवान नहीं था, उनका नाम सेठ गुनचन्दजी था। उनके एक पुत्री थी जो रूप और लावण्य से भरपूर थी। वह धर्म में सदा सावधान रहती थी। उसने दिगम्बर मुनिराज के समीप श्रीभक्तामरजी का अध्ययन रिद्धि मन्त्र समेत किया था, उसका नाम दृढ़व्रता था।

जब दृढ़व्रता ब्याह के योग्य हुई तो खोजते खोजते सेठ गुणचन्द्रजी ने बाई दृढ़व्रता का विवाह शिवपुर नगर के प्रसिद्ध

सेठ कर्मचन्दजी के पुत्र सुदत्तके साथ कर दिया। सेठ सुदत्तजी कोटिध्वज धनवान अवश्य थे, परन्तु धर्म, कर्मसे बिल्कुल शून्य थे! जब बाई दृढ़व्रता ससुराल को गई तो उन लोगों की अधार्मिक वृत्ति देखकर बड़ी चकित हुई। जब रात्रिके १० बज गये तब सासू ने बाई दृढ़व्रता से भोजन के लिये आग्रह किया। बाई ने उसे अपनी सब चर्य्या समझाई कि, हे माता! रात्रि भोजन, अनछाना जलपान और कन्दमूल का भक्षण ये बातें धर्म के बिलकुल विरुद्ध हैं और मैंने तो श्रीगुरु के समीप प्रतिज्ञा ले ली है कि मैं जीते जी रात्रि भोजन नहीं करूंगी। सासू ने तथा अन्य कुटुम्बी जनों वा उसके पतिने बहुतेरा समझाया, परन्तु वह सच्ची दृढ़व्रता अपने दृढ़व्रत से लेशमात्र भी नहीं डिगी, इस पर वे लोग उस धुरन्धरा से खूब अप्रसन्न हो गये और उसे मार डालने की तजबीज करने लगे।

एक दिन सेठ सुदत्तजी ने बाजीगरों*को कुछ दाम देकर एक बड़ा भयंकर सांप घड़े में रखकर मंगवाया और अपने शयनागार में मुंह बन्द करके चुपचाप रखवा दिया, रात्रि को जब इनका एकान्त मिलन हुआ तो सेठ सुदत्त ने दृढ़व्रता से कहा कि उस घड़े में एक फूलों का हार रक्खा है उसे उठा लाओ। भोली दृढ़व्रता को यह कपट ज्ञात नहीं था वह सीधी साधी घड़े के पास चली गई और हाथ डाल दिया। छली सुदत्त पलंग पर लेटा हुआ सोचता था कि अभी ही काम तमाम

* सपेरे।

हुआ जाता है, दूसरी शादी कर लेंगे। परन्तु "वाहरे जैन-धर्म! और वाह री! सत्यसिन्धु दृढ़व्रता" उसने घड़ेके अन्दरकी वस्तु हाथ से पकड़ कर निकाल ली तो देखती क्या है, कि बहुत ही बढ़ियां फूलों का गजरा है। वह उसे हाथ में लेती आई और बड़े उत्साह से अपने प्राणनाथ के गले में डाल दिया। वह पुष्पमाला पापी सुदत्त के क्रूर कपट के प्रभाव से पुनः भयंकर सर्प हो गया और सेठ सुदत्त को डंस लिया, जिससे वह मूर्छित हो गया। फिर क्या था सब कुटुम्ब में हा! हा! कार होने लगा। घर बाहर के सभी लोग घोषणा करने लगे कि, महा हत्यारी दृढ़व्रता ने पति हत्या की है, और अन्य पुरुष से दृढ़व्रता के आसक्त होने से ऐसा किया गया है।

अन्त में यह न्याय वहां के राजा चन्द्रपाल के पास गया। सांप भी पिटारी में बन्द कराके दरबार में भेजा गया। दृढ़व्रता का इजहार होनेपर उसने ऊपर कहा हुआ सब हाल सुनाया और यह भी कहा यदि सत्य न्याय नहीं होगा और मेरे ऊपर झूठा कलंक आवेगा तो श्रीमान् के ऊपर अपने प्राण विसर्जन करूंगी।

बहुत कुछ अनुसन्धान करने के अनन्तर सर्वदापुर नरेश ने अपने नगर के बाजीगरों को बुलाया और डांट लगाकर पूछा, तो उस बाजीगर ने जो सेठ सुदत्तजी को सांप दे गया था वह सच्चा हाल कह सुनाया। पश्चात राजा ने दृढ़व्रता की सासू को फटकार लगाई तो उसने भी स्वीकार किया कि दृढ़व्रता

को मार डालने का बेशक निश्चय किया गया था। उसने यह भी कहा कि—

चौ०—छिनमें सांप छिनकमें माल। यह कौतक कैसो भूपाल ॥

राजा चन्द्रपाल ने श्रीमती दृढ़ब्रता से पूछा कि, यह कौतुक किस मन्त्रके प्रसादसे होता है? तब उस प्रतिव्रताने 'रक्तेक्षण' आदि मन्त्र पढ़ा तो पिटारेका सांप फिरसे पुष्पमाला हो गया। उसने थोड़ा पानी इसी मन्त्र से मन्त्रित करके अपने पति के ऊपर छिड़क दिया जिससे वह प्रसन्न होकर उठ बैठा। इससे सब पर जैन-धर्म का बड़ा प्रभाव पड़ा और राजाके साथ सबने जैनधर्म को अंगीकार किया।

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौबलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम्
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति॥४२॥

घोड़े जहां हिनहिने, गरजे गजाली, ऐसे महा प्रबल सैन्य धराधिपोके—
जाते सभी बिखर हैं तब नाम गाए, ज्यों अन्धकार, उगते रविके करोंसे।४२।

भावार्थ—हे जिनराज! आपके नामका कीर्तन करने से लड़ाईमें घोड़ों और हाथियों के जिसमें भयानक शब्द हो रहे हैं ऐसी सेनाएं भी उदय को प्राप्त हुए सूर्यकी किरणों से नष्ट हुए अन्धकार के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होती हैं।

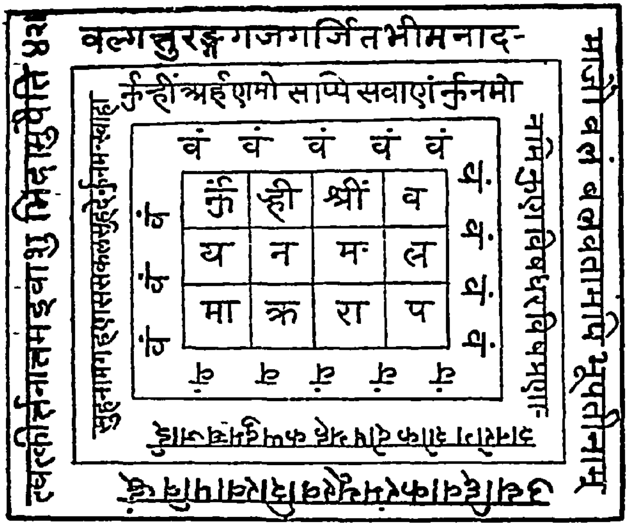

४२ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं ।

मंत्र—ओं नमो नमि ऊण विषहर विषप्रणाशन रोग शोक दोष ग्रह कप्पदुममच्चजाई सुह-नामगहणसकलसुहदे ओं नमः स्वाहा ।

फल—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यन्त्र पास रखने से युद्ध का भय नहीं होता ।

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

बर्छे लगे, बह रहे गज-रक्तके हैं तालाबसे, विकल हैं तरणार्थ योद्धा ।
जीते न जाय रिपु, समर बीच ऐसे तेरे प्रभो ! चरण-सेवक जीतते हैं ॥४३॥

भावार्थ—हे देव ! बरछी की नोकोंसे छेदे हुए हाथियोंके रक्त रूपी जल प्रवाह में पड़े हुए और उसे तैरनेके लिये आतुर हुए योद्धाओं से जो भयानक युद्धहो रहा हो उसमें दुर्जय शत्रुपक्षको आपके चरणकमल रूप वनका आश्रय लेने वाले पुरुष जीतते हैं ।

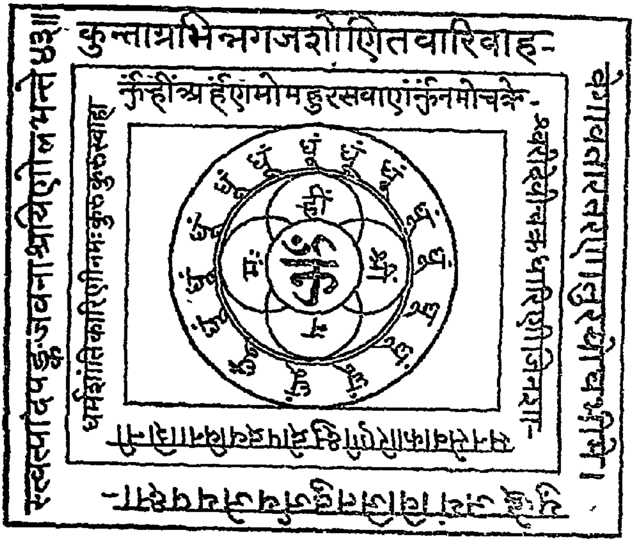

४३ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं।

मन्त्र—ओं नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासन सेवा कारिणी क्षुद्रोपद्रवविनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधना और यन्त्र पूजन से सब प्रकार का भय मिटता है और राजा द्वारा धन लाभ होता है।

राजा गुणवर्मा की कथा

भारतवर्ष में मथुरा नगर प्रसिद्ध है किसी समय वहां राजा रणकेतु राज्य करते थे। ये थे तो राजा, परन्तु धर्म और नीति का उन्हें कुछ भी ज्ञान न था। एक दिन उनकी स्त्री ने कहा कि आपका छोटा भाई गुणवर्मा आप से द्वेष भाव रखता है। आपतो इस तरफ कुछ ध्यान नहीं देते, पर वह अस्तीन का सांप है, कभी न कभी आपको डंस लेगा अर्थात् आपका राज छुड़ा लेगा।

यद्यपि गुणवर्मा बड़ा सुशील ज्येष्ठ भाईका बड़ा अज्ञाकारी और जिनभक्त था, श्रुतकीर्ति मुनिराज के समीप विद्याभ्यास करने और श्रीभक्तामरजी आदि मन्त्र शास्त्रोंकी क्रियाएं सीखने

में उसका समय जाता था, राज्य की ओर उसका ध्यान भी न था। परन्तु राजा रणकेतु के हृदयमें उनकी मूर्ख रानी के कहने से ऐसा समा गई कि उन्हें गुणवर्मा सा भाई भी शत्रु रूप भासने लगा और वे उसे घर से निकालने की चिन्ता में रहने लगे। एक दिन वे अपने मन्त्री से कहने लगे कि आप गुणवर्मा को देश निकाला दे दें, ऐसा किये विना मुझे विश्राम नहीं है। राजा रणकेतु की ऐसी ओछी बात सुनकर मन्त्री बड़े विस्मित हुए और राजा से कहने लगे।

चौपाई।

भाई भिन्न न कीजै राय। भाई विना सकल पत जाय।
भाई विना अकेले होय। वाकी वात न माने कोय ॥१॥
भाई विना होय रनहार। ज्यों जुग फूटे मारिय सार।
जित तित घेर लेय सब कोय। भुजा कटे ज्यों दुर्गति होय ॥२॥
रामचन्द्र लछमन दो वीर। दो मिलि बाध्यौ सागर नीर।
दोऊ मिलि लंका गढ़ लियौ। राज विभीषणको सव दियौ ॥३॥
जो दोऊ होते नहिं वीर। एक कहा सो वांधे धीर।
रावण काढ़ विभीषण दियो। राज्य खोय जग अपजस लियो ॥४॥
एक एक ग्यारह हो जाहिं। यह कहवत सबरे जगमाहिं।
तातें तुम जिन ऐसी करौ। मेरो मन्त्र हिये में धरो ॥५॥

अभिप्राय यह कि मन्त्री ने राजा को बहुतेरा समझाया परन्तु राजाके मनमें एक भी न भाया, वे उलटे मन्त्री पर नाराज हो पड़े। अन्तमें राजाने गुणवर्मा से कह दिया कि, हमारे देश-

से निकल जाओ, राजा को इतना कहते देर थी परन्तु गुणवर्मा को घर छोड़ने में देर नहीं लगी, वे इनके क्षेत्र से दूर वन की गुफा में निवास करने लगे।

एक दिन राजा ने अपने नौकरों द्वारा गुणवर्मा की खबर मंगाई तो उन्होंने समाचार दिया कि वे वनमें रहते हैं और एकान्त में भगवद्भजन करते हैं। यह सुनकर राजा ने और ही कल्पना की वह यह कि, मेरे मार डालने को कोई जादू टोना सिद्ध कर रहा है इसलिये वे उसे मार डालनेके लिये बड़ी भारी सेना लेकर वहां गये। जब गुणवर्मा ने सजी हुई सेना राजा रणकेतु की देखी तो उन्होंने ४२ और ४३ वें जुगल काव्यकी आराधना की जिससे चक्रेश्वरी देवी ने प्रगट होकर कहा कि तेरे मन में जो इच्छा हो सो कह।

चौ०—गुणवर्मा भाषै सुन माय। दीजे सेना मोहु बनाय।
एक बार भाईसे लड़ों। ता पीछे संजम आदरौं ॥१॥

तब तो देवी ने चतुरंगिणी* सेना सजा दी। दोनों ओर से रणभेरी बजने लगी, खूब घोर युद्ध हुआ और विक्रिया के बल से राजा रणकेतु को बांध लिया। निदान गुणवर्मा ने देवी से प्रार्थना की कि ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं इनका अनादर नहीं होना चाहिये। देवी रणकेतु को छोड़कर निजधाम को चली गई और रणकेतु पश्चात्ताप करते राजस्थान को चले गये, विद्वान गुणवर्मा ने जिन दीक्षा ली और आयु के अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्ग को गये।

---

* हाथी, घोड़े रथ प्यादे।

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतःस्मरणाद् व्रजन्ति ॥

हैं कालनृत्य करते मकरादि जन्तु, त्यों वाडवाग्नि अति भीषण सिन्धुमें है।
तूफानमें पड गये जिनके जहाज, वे भी प्रभो! स्मरणसे तव पार होते ॥४४॥

भावार्थ—हे जिनराज! आपका स्मरण करने वाले पुरुषोंके बड़े-बड़े मगरमच्छ और भयंकर वड़वानलसे क्षुभित समुद्रमें पड़े हुए जहाज पार हो जाते हैं।

४४ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाणं।

मन्त्र—ओं नमों रावणाय विभीषणाय कुंभकरणाय लंकाधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिन्तितं कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधनासे और पासमें यन्त्र रखनेसे आपत्ति मिटती है, समुद्र में तूफानका भय नहीं होता समुद्र पार कर लिया जाता है।

सेठ तामलिप्त की कथा

अपने भरतखण्ड के दक्षिण प्रान्तमें जैन-धर्मका अच्छा

प्रचार था। वहां किसी समय तामली नगरमें तामलिप्त नाम के एक सेठ रहते थे, जैन-धर्म में उनकी अच्छी रुचि थी और चन्द्रकीर्ति मुनिराजके पास भक्तामर काव्य मन्त्रों का अध्ययन किया करते थे।

एक दिन उन्होंने विदेश जाने की तैयारी की और बहुत सा माल जहाज में भरा कर बहुत-सी वणिक मण्डली के साथ रवाना हो गये। वे सब पवित्र जैन-धर्मके धारक थे। पंच परमेष्ठी और णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए सकुशल मनोवांछित स्थानपर पहुंच गये, धर्म के प्रसाद से कोई विघ्न नहीं आया। यहां से जो वस्तुएं वे ले गये थे वहां बेच दी और वहांसे बहुत से हीरा जवाहिरात खरीद कर जहाज भर लिया।

इन लोगों को इस वाणिज्यमें इतना विशाल लाभ हुआ कि फूले नहीं समाते थे। परन्तु उस परिग्रह में इतने मस्त हो गये कि, जिन-पूजन भजन में उपेक्षा करने लगे और पंच नमस्कार का स्मरण तो बिलकुल छोड़ दिया था। धन संचय की चर्चा करते और जहाज खेवते हुए आ रहे थे कि एक जलवासिनी देवी ने इनका जहाज रोक दिया। केवटियों और वणिक मण्डली ने बहुत प्रयत्न किये परन्तु जहाज जरा भी नहीं हिला। मल्लाहों ने कहा कि जलदेवी का कोप हुआ दिखता है दो चार पशुओं की बलि देने का प्रबन्ध करना चाहिये। यह सुनकर सेठ तामलिप्त ने साफ उत्तर दिया कि मैं ऐसा कदापि न करने दूंगा, जो कुछ भविष्य में होगा सो होगा, परन्तु प्राणी बध के मैं सर्वथा विरुद्ध हूँ।

संसारी जीव सुखसाता में चाहे ईश्वर को भूल जावे परन्तु विपत्ति में उन्हें प्रायः प्रभु का ही स्मरण होता है। अतः सेठ तामलिप्तने अपने सहचारी वर्गसे णमोकार मन्त्रका जाप, स्मरण करने को कहा और आप 'अम्भोनिधौ' आदि भक्तामर काव्य का जाप करने लग गये। १०८ वार जाप किया ही था कि चक्रेश्वरी देवीने प्रगट होकर कहा :—

चौ०—कहौ सेठ संकट है कौन। हमको वेग बतावहु तौन॥

सेठ तामलिप्त हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि, हे माता किसी व्यन्तरी ने जहाज को रोक रक्खा है चलाने से नहीं चलता है। फिर क्या था, इतना सुनते ही चक्रेश्वरी ने जहाज को एक लात मार दी, लात लगते ही वह जलवासिनी खूब चिल्लाई और रक्षा करो! रक्षा-करो!! कहती हुई चक्रेश्वरी देवीके चरणों पर लेट गई। उसने प्रतिज्ञा की कि, मैं आजसे हिंसा नहीं कराऊंगी। चक्रेश्वरी ने कहा कि तुम सेठजी से कहो मैं उनकी आज्ञाकारिणी हूँ। जलवासिनी ने सेठजी से बहुत ही नम्र निवेदन किया तो कृपालु सेठजी ने क्षमा करने के लिये कह दिया। चक्रेश्वरी देवी ने जल देवीको छोड़ दिया और निज धाम को चली गई। सेठ तामलिप्त सकुशल घर पर आये और अपने कुटुम्ब परिवार से सानन्द मिले।

उद्भूत भीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।

त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः।४५।

अत्यन्त पीडित जलोदर-भारसे जो है दुर्दशा, तज चुके निजजीविताशा।
वे भी लगा तव पदाब्ज-रजः सुधाको होते प्रभो! मदन-तुल्य सुरूप देही ॥४५॥

भावार्थ—हे जिनराज! भयानक जलोदर रोगसे जो पीड़ित हैं और शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होकर जीवनकी आशा छोड़ बैठे हैं ऐसे मनुष्य आपके चरण-कमलके रज रूप अमृतसे अपनी देह लिप्त करके कामदेवके समान सुन्दर रूपवाले हो जाते हैं।

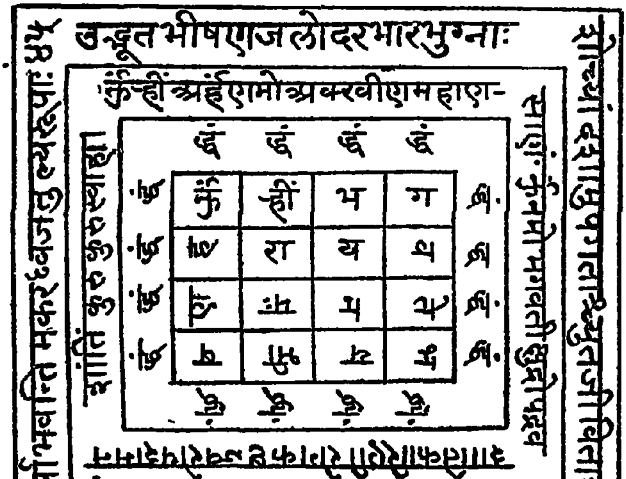

४५ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं।

मंत्र—ओं नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव-शान्तिकारिणी रोगकष्टज्वरोपशमं शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धि मंत्र की आराधनासे और यन्त्र पास रखनेसे महानसे महान भय मिटता है, प्रताप प्रकट होता है, रोग नष्ट होता है और उपसर्ग आदिका भय नहीं रहता।

दोहा—अब बन्दों चक्रेश्वरी, देवी मन बचकाय।
ज्यों प्रसन्न सबको भई, त्यों मम होहु सहाय ॥१॥

राजपुत्र हंसराज की कथा

मालवा प्रान्तमें उज्जैन नगर बहुत मनोहर और विस्तृत है। वहां किसी समय राजा नृपशेखर राज्य करते थे। उन्हें रानी विमलमती के शुभ संयोग से एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। बालक जन्म से ही बहुत रूपवान और सुशील था, उसका नाम हंसराज था। जब प्रिय हंसराज सात बरस का हुआ तो पिता ने पण्डित मनोहरदासजी की सेवा में विद्याध्ययन के लिये सौंपा और विद्वान पुरोहितजी ने बड़े चावसे उसे विद्याभ्यास कराया।

गीतिका—सूत्र शास्त्र सिद्धान्त ज्योतिष, सकल याहि पढ़ाई है।
व्याकरण अमर निघंटु पिंगल, छन्द बद्ध सिखाई है॥
अरु वाण मोचन पर बचावन रन भिरन जोधन तनी।
जल तरन पर के मन हरन सो दई विद्या अति घनी ॥१॥

बालक हंसराज विद्यामें सम्पन्न होकर घर आया ही था कि दैवयोग से उसकी पूज्या माता विमलमती का स्वर्गवास हो गया। इस वियोग से पिता पुत्र दोनों अत्यन्त दुखी हो गये। बहुत रोये, बहुत आर्त ध्यान किया। निदान राजा नृपशेखर ने अपना दूसरा विवाह कर लिया।

राजा की इस नव्य भार्या का नाम कमला था, परन्तु यह पूर्व स्त्री विमलाके सदृश नहीं थी, यह बड़ी कुटिल स्वभाव और निर्दयी थी। समय पाकर कमला रानी ने भी श्रीचन्द्र नाम का पुत्र प्रसव किया। योग्य होने पर राजा ने श्रीचन्द्रको भी विद्याध्ययन कराया। परन्तु कमला के हृदय में बड़ा ही

द्वेष भाव रहता था। वह यही सोचा करती थी कि यदि हंसराज मर जाता तो बड़ा कंटक टल जाता।

एक समय राजा नृपशेखर तो दिग्विजय को निकले और प्रिय पुत्र हंसराज को कमला रानी के भरोसे छोड़ गये। तब तो रानी कमला को अपने मनकी बात पूरी करने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने भोजन में दिनाई मिलाकर हंसराज को खिला दिया, जिससे स्वल्पकाल ही में हंसराज का शरीर पीला पड़ गया। रग रग में जहर का असर हो जाने से वे नितान्त अशक्त हो गये और बात, कफ, खांसी से पीड़ित रहने लगे। यद्यपि राजकुमार अपनी विमाता की यह करतूत समझ गये पर उससे वे कह भी क्या सकते थे और उससे लाभ भी क्या था! निदान वे कुटिला कमला के कुसंग में रहना उचित न समझ कर घर से निकल पड़े और बड़े कष्ट सहते सहते कठिनाई से नागपुर* पहुंचे।

वहां के राजा मानगिरि के यहां कलावती नाम की एक कन्या बहुत सुशिक्षिता और रूपवती थी। एक दिन राजा ने पुत्री से पूछा कि हे बेटी! तुम हमारे घर में सुख चैन करती हो, सो हमारे प्रसाद से करती हो या अपने भाग्य से? इस पर बुद्धिमती कलावती ने उत्तर दिया कि।

चौ०—काहुको कोउ समरथ नांह। देनेको इह पृथिवी मांह।
जैसो करम कियो जो होय। तैसो फल निपजावे सोय ॥१॥

कलावतीके इस साफ उत्तर पर वे बहुत कुपित हुए। उनने

---

* आजकल मध्यप्रदेश की राजधानी है।

मन्त्रियों के द्वारा अति रोगी हंसराजको बुलवाकर उसके साथ सुकुमारी कलावती का विवाह कर दिया, और दोनों को घर से निकाल दिया। वे उभय दम्पति बनमें विचरते विचरते एक दिगम्बर मुनिराज के पास गये और उनसे रोगमुक्त होने का उपाय पूछा। कृपालु मुनिराज ने हंसराज को "उद्भूत भीषण" आदि ४५ वां काव्य सिखा दिया। उन्होंने सात दिन तक योगासनमें बैठकर मन्त्र की आराधना की जिसके प्रसाद से वे बिलकुल निरोग और कामदेव सदृश रूपवान हो गये।

दिग्विजय करके जब उज्जैन नरेश महाराज नृपशेखर वापिस आये तो कमला रानी से पूछा कि प्रिय हंसराज कहां है? कमला ने उत्तर दिया कि आपने उसका विवाह नहीं किया था सो किसी कुलटा को लेकर कहीं चला गया है। राजा नृपशेखर ने जहां तहां हंसराज की खोज करने के लिये किंकर भेजे, उनमें से एक मनुष्य यह समाचार लाया कि वे नागपुर के एक बगीचे में हैं और एक रूपवती स्त्री उनके पास है। यह सुनकर कमला रानी का चित्त फूल गया और मन्त्री को नागपुर भेजा। यहां नागपुर नरेश मानगिरि को खबर लगी कि हंसराज जी नीरोग हो गये हैं और वे राजपुत्र हैं तब ये उनसे मिलने आये और कलावती से क्षमा प्रार्थना की। निदान राजा मानगिरिने बड़े सन्मानसे उन्हें बिदाकर दिया। जब हंसराजजी उज्जैन पहुंचे तब राजा नृपशेखर को अपनी स्त्रीकी क्रिया ज्ञात हुई, इससे इन्हें बड़ा वैराग्य आया। वे प्रिय हंसराजको राज्य भार

सौंप कर मुनि हो गये और आयुके अन्त में स्वर्ग को गये।

आपादकण्ठमुरुशृङ्खल वेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यःस्वयं विगतबन्धभया भवन्ति।४६।

सारा शरीर जकड़ा दृढ़ सांकलोंसे, बेड़ी पड़े छिल गई जिनकी वे जाघें।
त्वन्नाम-मंत्र जपते-जपते उन्हींके, जल्दी स्वयं झर पड़ें सब बन्ध बेड़ी ॥४६॥

भावार्थ—हे जिनेश! जिनके शरीर पांवसे लेकर गले तक बड़ी-बड़ी सांकलोंसे जकड़े हुए हैं और विकट बेड़ियोंकी धारोंसे जिनकी जंघाए अत्यन्त छिल गई हैं ऐसे मनुष्य आपके नाममात्र स्मरण करने से अपने आप बन्धन मुक्त हो जाते हैं।

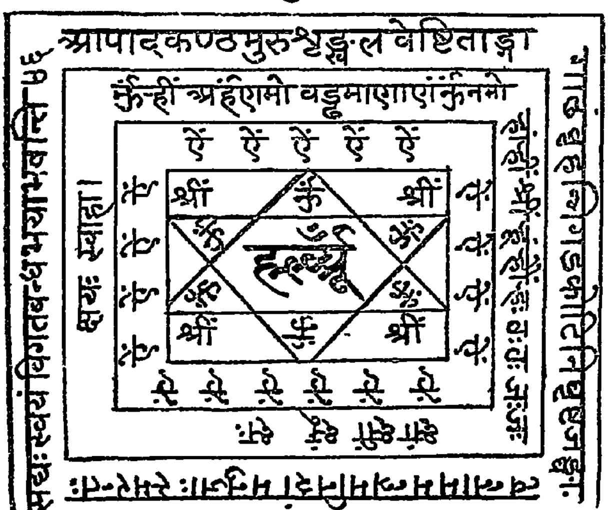

४६ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमोवड्ढमाणाणं।

मन्त्र—ओं णमो ह्रां ह्रीं श्री ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्र जपने और यन्त्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करनेसे कैदखाने से छुटकारा होता है। राजा वगैरहका भय नहीं होता! विधान प्रतिदिन १०८ बार जाप करना चाहिये।

राजपुत्र रनपाल की कथा

आर्यावर्त के प्रसिद्ध नगर अजमेर में किसी समय राजा उरपाल राज्य करते थे वे बड़े न्याय-शील और धर्मात्मा थे। पुण्योदय से उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, उसका नाम उन्होंने रनपाल रक्खा था। राजा उरपाल ने प्रिय रनपाल की शिक्षा पर अच्छा ध्यान दिया था उन्हें दिगम्बर जैन मुनिराज की सेवा में भेज दिया था और सकल जैन-शास्त्र तथा भक्तामर मंत्र यंत्र का खूब अध्ययन कराया था।

एक समय अजमेरके समीपवर्ती राज्य वासपुर के नरेशने पत्र द्वारा सूचना दी कि जोगिनपुर का बादशाह सुलतान आप पर चढ़ाई किया चाहता है आप शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करें। यह समाचार बांच कर राजा उरपाल बड़े ही क्रोधित हुए और राज सभा में घोषणा की कि, क्या अपने यहां कोई ऐसा शूर बीर है जो सुलतानशाह को जीवित पकड़ लावे ? यह सुनकर राजकुमार रनपाल ने भुजा उठा कर उत्तर दिया कि इस सहज काम के लिये आपका यह दास तत्पर है। प्रिय रनपाल का ऐसा साहस देखकर अजमेर नरेश बहुत प्रसन्न हुए और जोगिन पुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

कुमार रनपाल बड़ी भारी तैयारीके साथ सुलतानशाह पर चढ़ाई कीऔर दोनों तरफकी सेनाका घोर संग्राम हुआ। अन्तमें शाह सुलतान ने कुंवर रनपाल को पकड़ लिया और जेलखानेमें कैद कर दिया। उन्हें कठिन बेड़ियों से जकड़ दिया और भोजन

पान बन्द करके खूब तकलीफ दी। इस प्रकार कष्ट भोगते जब दो दिन और दो रात बीत गये तब तीसरी रात्रि को कुंवर रनपाल ने 'आपादकंठ' आदि ४६ वें भक्तामर काव्य का स्मरण किया तब तत्काल ही देवी प्रगट हो गई और बन्धन खुल गये। फिर क्या था, सवेरा होते ही कुमार रनपाल दरबारमें जा पहुंचे।

इन्हें दरबार में आया देख शाह सुलतान ने जेल दारोगा और सिपाहियों को खूब डांट सुनाई और पूछा कि इन्हें किसने छोड़ दिया है और किसके हुकुम से छोड़ा है ? उन्होंने विस्मित होकर उत्तर दिया जहांपनाह ! यह तो कोई चमत्कारी दीखता है, नहीं तो किसकी ताकत है जो हुजुरकी परवानगी के बाहिर कदम रख सके। तब सुलतान ने स्वयम् अपने हाथ से कुमार रनपाल को खूब कसकर बाँधा और जेलखाने में सख्ती से बन्द कर दिया।

जब रात्रि के १२ बजे का घण्टा बजा कि रनपाल ने पुनः मन्त्र का स्मरण किया जिससे सब बन्धन खुल गये। वे एक पलंग पर लेट गये और दो देवियां दासियों की नाई उनकी सेवा करने लगी। यह हाल सिपाहियों ने सुलतानशाह को एक झरोखेमेंसे साफ दिखा दिया। तब तो वह बहुत घबराया, और उन्हें राज्य सभा में बुलाया और उनकी बहुत सेवा सुश्रुषा की। निदान बार बार क्षमा प्रार्थना करके बड़े सन्मान के साथ उन्हें अजमेर में पहुँचा दिया। कुमार रनपाल ने अजमेर पहुंच कर सब वृत्तांत पिता को सुनाया। जिसे सुनकर उन्हें पहिले तो विषाद और पीछे

हर्ष हुआ । उन्होंने पवित्र जैन धर्म की बड़ी प्रशंसा की और अपना श्रद्धान और भी दृढ़ किया ।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

जो बुद्धिमान इस पुस्तकको पढे हैं, होके विभीत उनसे भय भाग जाता ।
दावाग्नि-सिन्धु-अहिका, रण-रोगका त्यों-पचास्यमत्तगजका, सब वन्धनों का ॥४७॥

भावार्थ—हे प्रभु ! जो विद्वान मनुष्य आपके इस स्तोत्रका अध्ययन करता है उसके मत्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, महोदर रोग और वन्धन आदिसे उत्पन्न हुआ भय मानों डरकर ही शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

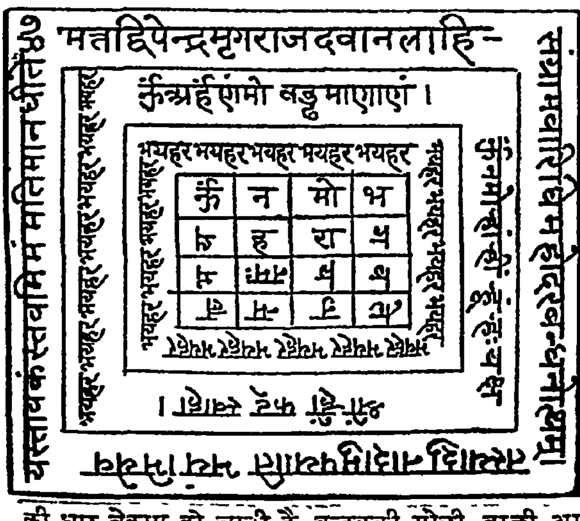

४७ ऋद्धि—ओं ह्रीं णमो अर्हं वड्ढमाणाण।

मन्त्र—ओं नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः क्षय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

विधि—१०८ बार मन्त्र को आराधना कर शत्रु पर चढाई करने वाले को विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है । शत्रु वश होना है शत्रुके शस्त्रों की धार वेकाम हो जाती है बन्दूककी गोली बरछी आदिके घाव नहीं हो पाते ।

स्तोत्रस्रजं तवजिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविधवर्ण विचित्रपुष्पाम्
धत्ते जनो य इह कन्ठगतामजस्रं
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

तेरे मनोज्ञ गुणसे स्तवमालिका ये गूथी प्रभो ! विविधवर्ण-सुपुष्पवाली-
मैंने सभक्ति, जनकंठ धरे इसे जो सो मानतुंग समप्राप्त करे सुलक्ष्मी ॥४८॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र ! मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक अपने गुणोंकी गूंथी हुई सुन्दर अक्षरों* की विचित्र पुष्पमालाको जो पुरुष कण्ठमें धारण करता है उस माननीय पुरुषको धन सम्पत्ति वा स्वर्गमोक्ष आदि लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।

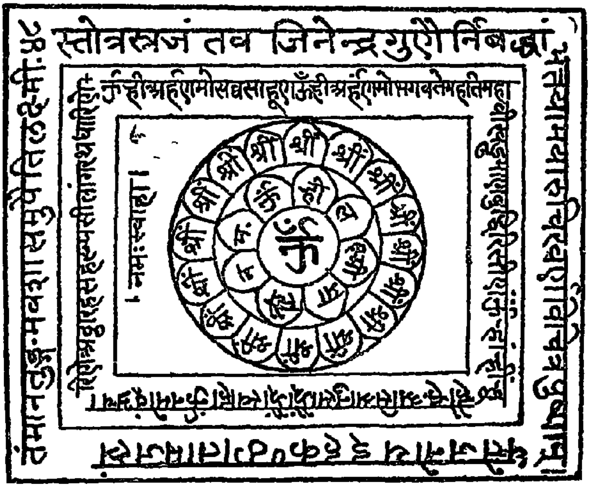

४८ ऋद्धि—ओं ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं।

मन्त्र—महति महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

ओं नमो बंभचारिणे अट्ठारह सहस्स सीलांग रथ धारणे नमः स्वाहा।

विधि—४९ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपनेसे और यन्त्र पास रखनेसे मनोवांछित कार्यकी सिद्धि होती है और जिसे अपने आधीन करना हो उसका नाम चिंतवन करनेसे वह अपने बश होता है।

---

* अ इ उ आदि अक्षरों की।

श्रीमहामुनि मानतुंग स्वामी की कथा

चौ०—सो अड़तीसम जानौ तेह। मान तुंग मुनिकी भई जेह।
सब सो रचित पीठिका कही। कथा आदि अन्त गहगहीं॥१॥
काव्य सितालिस अठतालीस। सोई मन्त्र जपे मुनि ईश।
तिन प्रसाद तव वन्धन खुले। नाना विधिके संकट टले॥२॥
भोज सभा जीती सव जाय। श्री जिनवरके मन्त्र सहाय।
ते ही जुगल मन्त्र परधान। सो तुम जपौ भव्य गुण खान॥३॥

अथ कवि प्रार्थना।

जैसों भाव ग्रन्थमें लहौ। सो भावार्थ निकारौ यहो।
भूल चूक मेरी जो होय। ताहि सुधारो भविजन लोय॥ १॥

जरूरी सूचना

ऊपर लिखी विधियों में से जिस विधिमें वस्त्र, आसन और माला का प्रकार नहीं बतलाया है उसे नीचे की भांति समझें—

'वशीकरण'—मन्त्रके साधनेमें वस्त्र, माला और आसन पीला लेना चाहिये।

'मारन'—में वस्त्र, आसन और माला काली चाहिये।

'लक्ष्मी-प्राप्ति'—के मन्त्र-साधनमें माला मोतीकी और वस्त्र सफेद चाहिये।

'मोहन'—में माला मूंगाकी और वस्त्र लाल चाहिये।

'आकर्षण'—में वस्त्र हरा और माला हरी लेना चाहिये।

जिस विधिमें दिशा न बताई गई हो उसका विधान करते समय मुख पूरवको करके बैठें।

यन्त्र भोजपत्र पर अनारकी कलम द्वारा केशरसे लिखना चाहिए।

—सम्पादक।

स्व० कविवर पंडित विनोदीलालजी का परिचय

चौ०—जाके राज परम सुख पाय । करी कथा हम जिनगुन गाय ॥
साहजादपुर शहर मंझार । रहे सदा तिनके आधार ॥१॥
काष्टा संघ आदि जिन तनों । माथुर गच्छ उजागर घनों ॥
पुष्कर गन गन गणमें सार । जैन धरमको परम सिंगार ॥२॥
कुमर सेन मुनिके आम्नाय । प्रगटौ श्रावक धर्म सहाय ॥
वैश्य वंशमें उद्यत महा । जैन धरम करुणामय लहा ॥३॥
ता परसाद महा गम्भीर । अगरवार गुण अंग सुधीर ॥
गरग गोत्र उत्तम गुनसार । अष्टादश गोतम सरदार ॥४॥
अखन चूल है मेरी अल्ल । अनख मोहि लागे ज्यों शल्य ॥
मिथ्यातम को नाशन हार । प्रगटौ कुलकौ परम सिंगार ॥५॥
मण्डन को परपोता भलौ । पारस पोताको जस चलौ ॥
दरिगह मलको सुत गुनधाम । लाल विनोदी मेरो नाम ॥६॥
संवत सत्रह सौ सैंताल । सावन सुद दुतिया रविवार ॥
शुभ दिन कथा सपूरन करी । प्रथम जिनेन्द्र तनी गुनभरी ॥७॥

जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख
धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण
और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है

(पांडुशिला .सिंघासन, छत्र, चवर प्रातिहार्य,जाप माला .मंगल कलश, पूजा बर्तन .चंदोवा,तोरण .झारी .

(शुद्ध चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किया जाता है)

नोट:-हमारे यहाँ घरो में उपयोग हेतु .साधुओ के उपयोग हेतु .
अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध घी भी आर्डर पर
उपलब्ध कराया जाता है

SOURABH KUMAR JAIN
9993602663
77229 83010
SOURABHJN1989@GMAIL.COM

जय जिनेंद्र
श्री
शुद्ध घी
देशी गाय का शुद्ध घी
शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी
साधु व्रती एवं धार्मिक अनुष्ठानों को ध्यान
में रखकर बनाया गया शुद्ध देशी घी
पहले इस्तेमाल करें फिर विश्वास करें
संपर्क सूत्र
CONTACT FOR ORDER
CALL AND WHATSAPP
9993602663
7722983010

Contact for order
Call and whatsapp
9993602663
7722983010

9993602663

10"
11"
13"

11"
13"
15"

णमोकार महामंत्र
णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायणं
णमो लोए सव्वसाहूण
एसो पंच णमोकारो, सव्व-पावप्पणासणो ।।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।

5feet

6.5
22/29

18/29
5.5

पीतल डिब्बा सेट

REDMI NOTE 5 PRO
MI DUAL CAMERA

WEIGHT
42040
Essae
DS-852

WEIGHT g
Essae
DS-852

WEIGHT g
21565

दिगंबर जैन ग्रंथो की पीडीएफ
के लिये हमारे whatapp नंबर
पर संपर्क करें
09993602663
सौरभ सागर (इंदौर)